बापू और स्त्री

l

सुजाता

l

सर्व सेवा संघ—प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-२२१००१

© âßü âðßæ â¢ƒæ-
Âý·¤æàæÙ

ISBN
978-81-922755-8-1

BAPU AUR SHTRI

By
Sujata

Price : Rs. 25/-

बापू और स्त्री

लेखक
सुजाता

संस्करण : पहला
प्रतियाँ : ११००
जून, २०१२

प्रकाशन
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-२२१ ००१
फोन-फैक्स : ०५४२-२४४०३८५
E-mail : sarvodayavns@yahoo.co.in

अक्षर-संयोजन
आर.के.कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर
राजघाट, वाराणसी

मुद्रक
सुरभि प्रिंटर्स
इण्डियन प्रेस कालोनी,
मलदहिया, वाराणसी

मूल्य : पचीस रुपये

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
	भूमिका	4 — 5
1.	बापू और स्त्री	7 — 26
2.	स्त्री जागरण	26 — 37
3.	बाल–विवाह, विवाह	37 — 44
4.	दाम्पत्य जीवन	44 — 57
5.	परदा–प्रथा	57 — 61
6.	शास्त्र में स्त्री निन्दा	61 — 66
7.	पुत्र–पुत्री में समानता	67 — 69
8.	आभूषण एवं साज–श्रृंगार	69 — 74
9.	स्त्रियों के सद्गुण	75 — 77
10.	स्त्रियों की अज्ञानता	77 — 80
11.	सामाजिक समानता	81 — 86
12.	विधवा जीवन	87 — 92
13.	सती	92 — 94
14.	स्त्री दमन	94 — 99
15.	बलात्कार	99 — 100
16.	अबला नहीं, सबला	101 — 106
17.	स्त्री–स्वतंत्रता	106 — 1108
18.	स्त्री–स्वाबलंबन	108 — 110
19.	विविध	110
20.	हिन्दू–मुस्लिम एकता में स्त्रियों की भूमिका	111
21.	स्वयं गांधी	111 — 112

भूमिका

संपूर्ण गांधी वाङ्मय रूपी महासागर में गोता लगाने के बाद मैं आनंद, रोमांच और श्रद्धा से अप्लावित हो गई। मेरी हालत उस गोताखोर की तरह हो गई जिसे अपने आस पास मोतियों का ढेर मिल गया हो। वह किसे ले और किसे छोड़े। संपूर्ण गांधी वाङ्मय में मानव जीवन का कोई भी पहलू अनछुआ न रहा है। प्रत्येक मानवीय पक्ष को मौलिक, व्यवहारिक और सार्वकालिक रूप में दर्शाया गया है। जैसे महाभारत के विषय में कहा जाता है कि जो पूरी दुनियाँ में है वो महाभारत में है और जो महाभारत में नहीं है वह दुनियाँ में भी नहीं है। बस यही हाल संपूर्ण गांधी वाङ्मय का है, यहाँ मानवता, मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होने वाला कोई भी उत्प्रेरक अनुपस्थित नहीं है, किन्तु मेरी सामर्थ्य बहुत कम है, फिर भी मैं एक छोटे गोताखोर की तरह चार ही मोती चुन पाई और मुझे विश्वास है कि इन मोतियों को समेटने में मैंने लापरवाही नहीं की है। निम्नलिखित चार मोतियाँ हैं–1. बापूकृत बाल पोथी, 2. महात्मा गांधी की दृष्टि में स्त्री, 3. महात्मा गांधी की दृष्टि में आध्यात्म, 4. महात्मा गांधी की दृष्टि में नैतिकता।

महात्मा गांधी के बहुआयामी व्यक्तित्व के किस पहलू को छोटा कहें और किसे बड़ा क्योंकि उनकी नजर में ब्रिटिश शासन को चुनौती देना और किसी भी स्त्री की छोटी सी छोटी समस्या को सुलझाना एक समान महत्वपूर्ण थे, उन्हीं के शब्दों में–

"हिन्दुस्तान की समस्याओं को सुलझाने में मुझे जितना रस आता है, उससे भी ज्यादा आश्रम संबंधी बातों में और उससे भी ज्यादा बहनों के प्रश्न सुलझाने में आता है, जैसा पिण्ड में वैसा ब्रह्माण्ड में।"

महात्मा गांधी की दृष्टि में पूर्ण मनुष्य और पूर्ण स्त्री में कोई भेद नहीं था। उनकी दृष्टि में चौबीसों घंटे स्त्री–पुरुष के भेद को मन में रखकर जीना और महसूस करना मानसिक कमजोरी है। इतना आधुनिक विचार आज से सौ साल पहले रखना एक आश्चर्य से कम नहीं है। आज ही नहीं आने वाले सौ सालों में क्या इतने प्रगतिशील विचारक भारत के स्त्री और पुरुष होंगे?

अंत में, एक बात और कहना चाहूँगी। सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय के अध्ययन और अनुशीलन से मुझे यह प्रेरणा प्राप्त हुई और गांधी के इस पक्ष पर वाङ्मय में यत्र–तत्र बिखरी सामग्रियों को मैं क्रमबद्ध ढंग से संकलित करने लगी। संकलन के क्रम में बार–बार मुझे लगा कि गाँधी की जीवन–शैली और जीवन–दर्शन के इस अविज्ञापित पक्ष को जनसाधारण के लिए, जनसाधारण की भाषा में उपलब्ध कराया जाय। ताकि नयी पीढ़ी अनुप्राणित–प्रेरित हो सके।

इस पुस्तक की सामग्री सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय से ली गयी है। इस कारण मैं अपने को लेखिका नहीं, "ताकिब" मानती हूँ। यह पुस्तक जिस रूप में हैं, उसी रूप में गांधी के जीवन–दर्शन को अर्पित–समर्पित है।

–सुजाता

बापू और स्त्री

बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि आज भारत की स्त्रियाँ जिस मुकाम पर खड़ी हैं, उन्हें इस अवस्था तक लाने में महात्मा गांधी की अप्रतिम भूमिका रही है। जस्टिस रानाडे ने कहा था कि "हमलोग अपनी पूरी जिंदगी में स्त्रियों के हित में जितना काम कर पाएँगे, महात्मा गाँधी एक दिन में कर देते हैं।" इसी से कल्पना की जा सकती है कि स्त्रियों को इस मुकाम तक पहुँचाने में इतने तेज कदम चलने वाले बापू का कितना महत्तम योगदान है। हालाँकि आज भी भारत की स्त्रियों को बापू के सपनों के भारत की स्त्रियों की स्थिति प्राप्त नहीं हैं। आज भी स्त्रियाँ अत्याचार, बलात्कार, हिंसा, सामाजिक भेदभाव, पति और परिवार का दमन जैसे दुष्चक्रों में फँसी कराह रही है। इनसे मुक्ति की छटपटाहट तो उनमें है, लेकिन इस दुष्चक्र से निकालने के लिए अब गांधी जैसा कोई रहनुमा नहीं। महात्मा गांधी ने कहा था देश की आजादी के बाद मैं अपना पूरा समय स्त्रियों के उत्थान में लगाऊँगा। उन्होंने जब स्त्रियों को घनघोर अज्ञानता की अवस्था में देखा, तो यह महसूस किया कि इनकी इस हद तक अज्ञानता का कारण सिर्फ पुरुष हैं। जिन्होंने इन्हें चूल्हे–चौके और घर–आँगन के मकड़जाल में इस तरह उलझा दिया है कि वे बाहर की हवा भी नहीं ले पाती। उन्हें कुछ भी पता नहीं कि बाहरी दुनिया में क्या हो रहा है। उन्हें यह भी नहीं पता कि सार्वजनिक जगहों पर कैसे उठा–बैठा जाता है, कैसे बोला जाता है। लेकिन इसके लिए उन्होंने स्त्रियों को बिल्कुल दोषी नहीं माना बल्कि पूरे पुरुष समाज को ही उत्तरदायी माना।

किंतु साथ ही साथ पढ़ी–लिखी समझदार एवं स्वावलंबी महिलाओं से भी उन्होंने आशा की कि वे आगे आएँगी और अपने से पिछड़ी महिलाओं को आगे लाएँगी। दुर्भाग्यवश बापू, आजादी के तुरंत बाद मृत्यु के क्रूर पंजों द्वारा दबोच लिए गए। इसी से अब मुकाम पर

पहुँच चुकी स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पीड़ित और शोषित स्त्रियों को आगे लाएँ। गाँधीजी का मानना था कि स्त्रियों का उद्धार स्त्रियों के ही हाथों हो सकता है। उन्होंने संपूर्ण स्त्री को आगे लाने का आह्वान उन मुट्ठी भर स्त्रियों से किया था, जिन्होंने अपनी मंजिल पा ली थी। आज भारत वर्ष की वे स्त्रियाँ, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से स्वावलंबी हैं, भारतीय स्त्रियों के जागरण के लिए यदि थोड़ा–थोड़ा प्रयास भी करती हैं, तो यह एक महाप्रयास बनकर स्त्री–चेतना को जागृत कर या उर्ध्वमुखी बनाकर अप्लावित करके कहाँ से कहाँ पहुँचा देगा। एक दीप से दूसरा और इस तरह हर अगला दीप जलकर बनती दीपमाला स्वतः दीपावली का मनोरम दृश्य बना देगी। साथ ही महात्मा गांधी ने स्त्रियों के उत्थान के लिए जो भागीरथ प्रयास किया है उनके प्रति भी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

जब पर्दा–प्रथा अपनी चरम अवस्था में थी, भारत की स्त्रियाँ भेड़ों और बकरियों की तरह दड़बे में सिकुड़ी–सिमटी थी। वे न तो सार्वजनिक सभा में जा सकती थी और न किसी से बातें कर सकती थी। अपनी दहलीज से पैर निकालना भी उनके लिए दूभर था। उनकी दुरवस्था को देखकर महात्मा गांधी विह्वल हो गए।

संयुक्त प्रांत, बंगाल तथा बिहार में पर्दा का अधिक प्रचलन था। महात्मा गांधी का बिहार में प्रवास चल रहा था। जिन सज्जन के घर पर वे बरामदे में बैठे हुए थे और वहाँ मौजूद लोगों से बातें कर रहे थे, महिलायें खिड़कियों और छेदों से उन्हें निहार रही थीं। गांधी ने उन निहारती, मासूम, बेबस गुलामी से जकड़ी आँखों को देखा। उनकी असहायावस्था को समझा और साथ ही साथ यह महसूस भी किया कि ये बेचारी नहीं जानतीं कि स्वतंत्रता इनका भी मौलिक अधिकार है। ये नहीं जानतीं कि ये इनकी सहज अवस्था नहीं है, जिसे इन्होंने सहज मान लिया है। उसी समय कोई विदेशी महिला गांधी जी से मिलने आई। उसने उनसे बातें की, हँसी और मुस्कुराई भी तथा अपने समस्त कार्यों का पूर्ण विवरण विस्तृत रूप में दिया

और चली गई। महात्मा गाँधी ने गौर किया कि अंदर से झाँकती हुई आँखें और भी विस्मित और विस्फारित होकर फैल रही हैं। तब वे अंदर गए, उन स्त्रियों से मिले तथा पूछा–अभी–अभी आपने एक विदेशी महिला को देखा, वे अकेली उतनी दूर से आपके देश में आई हैं, लोगों से मिलती हैं, बातें करती हैं और आपके समाज में ही सेवा का काम कर रही हैं। क्या आपकी इच्छा नहीं होती कि आप भी बाहर निकलें, बातें करें, लोगों से मिलें ?

"क्यों नहीं करता है बापू ? करता है न, लेकिन हमलोगों के घर के पुरुष नहीं चाहते कि हम घर से बाहर निकलें।"

महात्मा गांधी ने महिलाओं के इस दर्द और आह को समझा और संपूर्ण भारत वर्ष के लोगों का आह्वान किया कि आप अपने घरों से पर्दा–प्रथा मिटायें। सभी कांग्रेसियों को शपथ दिलवाया कि आप अपनी बेटी, बहन, पत्नी, माँ सभी को घर से बाहर लाकर सार्वजनिक कार्यों में लगायें। एक सामाजिक क्रांति आ गई। घर से निकलकर गलियों, कूचों और सड़कों पर खादीधारिणी स्त्रियाँ अपनी गरिमामयी उपस्थिति से लोगों को चकित और विस्मित करने लगीं।

बिहार में महात्मा गांधी के सबसे प्रिय और योग्य अनुयायी मगन लाल गाँधी की मृत्यु पर्दा–प्रथा के उन्मूलन के संघर्ष के दौरान ही हो गई। उनकी बीस वर्षीया पुत्री राधा गांधी पर्दा–प्रथा को समाप्त करके महिलाओं को घर से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रही थी, उन्हीं के संघर्ष को और भी गतिशीलता देने वे आए थे। गांधी जी के अत्यन्त प्रिय अनुयायी ने बिहार आकर पर्दा–प्रथा के विरूद्ध संघर्ष के दौरान शहादत दी, इसे कितने लोग जानते हैं ?

एक ओर गांधी जी पर्दा–प्रथा के विरूद्ध संघर्ष कर रहे थे, तो दूसरी ओर इसके लिए उन्हें काफी विरोध भी सहना पड़ रहा था। महात्मा गांधी के पर्दा–प्रथा के उन्मूलन का विरोध कट्टर हिन्दू और मुस्लिम दोनों कर रहे थे और हास्यास्पद एवं मन को दुखी करने वाली बात यह थी कि मासूम, भोली एवं शोषिता स्त्रियाँ तक इसका

विरोध कर रही थी, क्योंकि वे सोचती थी कि प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा गलत कैसे हो सकती है ?

लेकिन महात्मा गांधी का कहना था कि कोई भी चीज़ सिर्फ प्राचीन होने से सही नहीं हो जाती, पाप बहुत प्राचीन समय से हो रहा है तो उसके बारे में क्या कहेंगे ?

तथाकथित कट्टर धार्मिक हिन्दू धर्मध्वजारोही नेता, जो अपने को पूरी स्त्री जाति की पवित्रता के ठीकेदार समझते थे, उनकी दृष्टि में महात्मा गांधी हिन्दू धर्म की महिलाओं के पथभ्रष्टक थे। उन महानुभावों की दृष्टि में हिन्दू धर्म स्त्रियों के घर से बाहर कदम निकालते ही नष्ट हो जाता। किन्तु महात्मा गांधी ने सिर्फ गालियाँ खाकर ही नहीं बल्कि बम एवं गोलियों के आक्रमण झेलकर भी अपने इस कार्य को नहीं रोका।

मुस्लिम कट्टर नेता तो विरोध कर ही रहे थे। महात्मा गांधी ने उनके समाज के प्रतिष्ठित घरों की बेटियों को अपनी बेटियाँ बनाकर उन्हें सार्वजनिक कार्यों में लगाया।

मुझे याद है एक बार जब तेज हवा के झोंके से एक स्त्री की साड़ी का उड़ता हुआ आँचल एक साधु से स्पर्शित हो गया और उसे पता भी नहीं चला, किन्तु जब वह थोड़ा आगे बढ़ी तो उस साधु की कर्णकटु आवाज उसके कानों में आई कि उस स्त्री की साड़ी उससे स्पर्शित हो गयी और उसे अभी स्नान करना पड़ेगा।

क्या साधु को अपनी ऊँचाई साबित करने के लिए स्त्री जाति को अपमानित करना आवश्यक था ? यह भी ध्यान में नहीं आया कि स्त्री जाति ही तो उसका उद्गम स्थल है। वस्तुतः उस समय की सोच के अनुसार स्त्री–स्पर्श को नरक का द्वार बताकर सार्वजनिक रूप से स्त्रियों से दूर रहना और उन्हें अपमानित करना पुरुषों की ऊँचाई का मापदंड बन गया।

बेचारी बनी स्त्रियों को किसी ने मनुष्य की तरह सम्मान देना जरूरी नहीं समझा और स्त्रियों ने इसे ही अपनी नियति माना। वे उन

साधु महात्मा की भी बलिहारी लेती रहीं जो उन्हें माया कहकर तिरस्कृत करते रहे और साथ ही वे उनके ब्रह्मचर्य के तेज का दूर से ही दर्शन कर कृत्य–कृत्य होती रहीं। उनमें यह सोच–समझ नहीं आ पाई कि जो स्त्री–दर्शन मात्र से समाप्त हो जाने वाले ब्रह्मचर्य की कमजोरी को भाँप पाती। समाज द्वारा इस तरह पद–दलित होती हुई स्त्रियों का पक्ष जल्दी किसी महापुरुष ने नहीं लिया–शायद महात्मा गांधी को छोड़कर किसी ने भी नहीं। विनोवा ने कहा है कि संपूर्ण भारतीय संस्कृति में श्रीकृष्ण, महावीर और गांधी इन्हीं तीन महापुरुषों ने स्त्री जाति को वह मान, सम्मान दिया जिसकी वो अधिकारिणी थी। श्रीकृष्ण तो गोपीजन वल्लभ ही हो गए, महावीर ने स्त्रियों को भिक्षुणी बनने का अधिकार दिया और महात्मा गांधी ने तो पूरी स्त्री जाति की ही रहनुमाई की–पिता, माता, मित्र, सहचर और भाई के रूप में। उनका स्त्रियों के साथ बिल्कुल सहज संबंध था। उनका ब्रह्मचर्य न तो स्त्रियों के साथ रहने, बैठने, सोने, खाने, पीने से भंग होता था; न स्त्रियाँ उनके लिए किसी तरह पुरुषों से कमतर थीं।

पुरुषों के समकक्ष लाने और स्वतंत्रता दिलाने के लिए स्त्री जाति कभी भी महात्मा गांधी से ऋणमुक्त नहीं हो सकती। वस्तुतः स्त्रियों को भी मनुष्य मनवाने के लिए महात्मा गांधी कट्टर पोंगा पंथी लोगों की नजरों में चुभने लगे, मानो उनके जीवित रहने से सारी स्त्रियाँ खुली हवा में साँस लेकर धर्म को नष्ट कर देगी। इसके लिए उनपर कितनी ही बार प्रहार भी किए गए।

महात्मा गांधी ने इसमें इन कट्टर धार्मिक व्यक्तियों का कोई दोष नहीं माना, क्योंकि ऐसे लोगों को खुद पता नहीं कि धर्म क्या है ? ब्रह्मचर्य क्या है ? स्त्री और पुरुष में लिंगभेद के अलावा और कोई भेद नहीं है–इस सत्य को न वे जानते हैं और न समझना एवं जानना चाहते हैं। पुरुष अपने मन की विकृतियों के लिए स्त्री को दोषी मानता है, इससे वह और भी कुंठा का शिकार बन जाता है। वह विवेकपूर्ण ढंग से विचार नहीं करता। यह उन्हें अवसादग्रस्त बना देता है।

महात्मा गांधी का स्त्री–पुरुष संबंध के बारे में एक अनूठा और अलौकिक विचार था–वह है स्त्री–पुरुष का सहज संबंध। उनके अनुसार रूढ़िगत परम्पराओं ने स्त्रियों को एक ऐसे कठघरे में ला खड़ा किया है, जिसे देखते और स्पर्श करते ही व्यक्ति विकारमय हो जाता है। इसी कारण स्त्रियों से दूर रहने का विचार जन्मा और फलता–फूलता गया। महात्मा गांधी का मानना था कि इन्हीं वर्जनाओं की वजह से यह अभेद्य दीवार खड़ी है। इसी कारण स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर एक दूसरे को असहज अवस्था में ला डालते हैं और स्वयं भी असहज हो जाते हैं। महात्मा गांधी ने अपने आश्रम में इस असहज अवस्था को सहज बनाने का भरसक प्रयत्न किया। सेवाग्राम के आदि–कुटी के बड़े कक्ष के एक कोने में महात्मा गांधी हैं, तो दूसरी ओर राजकुमारी अमृत कौर; दूसरे कोने में अब्दुल गफ्फार खाँ हैं तो दूसरी ओर प्रभावती जी और तीसरे कोने में संत तुकड़े जी महाराज। यहाँ एक साथ रहते हुए सब लोग बिल्कुल सहज थे। उनलोगों के मन में चौबीसों घंटे चलने वाली वह ग्रंथि कि यह स्त्री है, यह पुरुष है लगभग समाप्त हो चुकी थी और वे सिर्फ मनुष्य थे जो सही मायने में मनुष्यत्व को पाने की ओर अग्रसर हो रहे थे।

महात्मा गांधी ने एक नारा दिया था कि तुम मुझे खादी दो और उसी खादी से मैं स्वराज्य का ताना–बाना बुन दूँगा। उनके चरखे को राजनीतिक नजरिए से देखा जाता है कि उन्होंने खादी के द्वारा ब्रिटेन के लंकाशायर की रीढ़ को कमजोर बनाकर उसे आर्थिक नुकसान पहुँचाया, किन्तु बात सिर्फ इतनी नहीं थी। महात्मा गांधी ने चरखा रूपी अस्त्र देकर यहाँ की महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाकर उसे मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने की कोशिश की।

महात्मा गांधी ने चरखा को अपनी साधना बना ली। पुरुषोचित अहं रखने वाले अपने सहयोगियों को उन्होंने बार–बार समझाया कि चरखा कातना किसी भी तरह कमतर कार्य नहीं है। वे तो स्वयं चरखा के पर्यायवाची ही बन गए।

उन्होंने वेश्याओं तक को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने के लिए इसी चरखा को माध्यम बनाया। महात्मा गांधी मानते थे कि 'वेश्या' शब्द ही पुरुषों की पाशविक वृति की उपज है। जब तक पुरुष अपनी पशुता नहीं छोड़ेंगे, समाज में वेश्याएँ भी रहेंगी, किन्तु वे बहनें जो इस दलदल में फँस चुकी हैं, चरखे को ही अपनी आजीविका और आत्मा दोनो का आधार बनाकर समाज की सेवा के लिए अपने को समर्पित करके स्वाभिमान के साथ अपनी जिंदगी जीएँ।

उन्होंने वेश्याओं से कहा–बेटी, इसमें तुम्हें पैसा कम मिलेगा, किन्तु आत्मबल ज्यादा मिलेगा, तुम ईश्वर का नाम जपते–जपते चरखा कातो, देखो, तुम्हारी जिंदगी कितनी बदल जाएगी। उन्होंने युवकों से आह्वान किया कि जो वेश्या बहनें–बेटियाँ विवाह करना चाहती हैं, आपलोग आगे बढ़कर उन्हें अपनायें। कितनी ही वेश्याओं ने उस नारकीय जीवन से अपने को मुक्त कर चरखा को जीवन यापन का आधार बनाया, तो कितनों ने साहसी और चरित्रवान युवकों से विवाह रचाकर अपना घर संसार बनाया।

महात्मा गांधी ने अपने जीवन काल में हजारों पुत्रियाँ बनाई। वे अपनी पुत्रियों के लिए माता और पिता दोनों की भूमिका निभाते थे। आज पिता और पुत्री का जैसा सहज संबंध है, सौ साल पहले नहीं था। कुछ ऊँचे वर्ग के घरों को छोड़कर पुत्रियाँ अपने पिता से बात तक नहीं कर पाती थी। पुत्रियाँ अनुपयोगी समझी जाती थी। जैसे बोझ। गांधी जी ने इस बुराई को देखा और समझा। जन्म के साथ ही अपने घर में अनुपयोगी वे बेटियाँ, जो अपने पिता के लिए अपने कलेजे को निकालकर दे सकती थी, एक कोने में पड़ी हुई थी। माता–पिता की मृत्यु पर संवेदनशील पुत्रियाँ तुलनात्मक रूप से पुत्रों से ज्यादा शोक में डूबी रहती थी, किन्तु समाज से सांत्वना और संदेश हमेशा पुत्रों को मिलता था। महात्मा गांधी ने अपने पूरे जीवन काल में पिता और माता की मृत्यु होने पर मृतक और मृतका के पुत्र और पुत्री दोनो के रहने पर हमेशा पुत्रियों के नाम संदेश दिया।

पुत्रियों को, जो दिल और दिमाग से माता–पिता से ज्यादा जुड़ी रहती, किन्तु सामाजिक रूप से थोड़ा अलग–अलग रहती थी, महात्मा गाँधी ने मुख्य धारा से जोड़ा–

"अपने पिता की सेवा के लिए अपनी जिंदगी न्यौछावर करने वाली पुत्रियों के प्रति मेरे मन में अत्यन्त आदर है। वे प्रशंसनीय हैं, और ऐसी पुत्रियाँ मुझे बेहद पसंद हैं।"

प्रायः पुत्रों के लिए तो यह कहा जाता है किन्तु पुत्रियों के लिए नहीं। हाँ पुत्रवधुओं से आशा की जाती है कि वे अपने सास–ससुर की सेवा जी–जान लगाकर करें और इसी मानसिकता की जड़ में है भ्रूण–हत्या।

मनु और आभा गांधी को अपने बुढ़ापे की लाठियाँ बनाकर महात्मा गांधी ने पूरे भारत वर्ष को यह संदेश दिया कि सिर्फ पुत्र ही नहीं, पुत्रियाँ भी पिता के बुढ़ापे की लाठियाँ बन सकती हैं।

पुत्र–पुत्री के लालन पालन में माता पिता द्वारा असमान व्यवहार करने से बचपन से लड़कों में अहं की भावना आ जाती है और बचपन से ही भाई अपने आपको बहनों से श्रेष्ठ मानने लगता है। जिसके फलस्वरूप स्त्री का असम्मान करना उसके संस्कार में चला आता है, इस बात को गांधी जी ने बहुत अच्छी तरह समझा था। इसी से उन्होंने अपनी बालपोथी के माध्यम से बचपन से ही लड़के के अंदर माँ के द्वारा यह संस्कार दिलवाया है कि भाई भी अपनी बहन के साथ घरेलू कार्यों में भागीदारी करे। बापूकृत बाल–पोथी की माँ कहती है "मैं तो कहती हूँ कि घर का काम सीखने और करने की जितनी जरूरत शांता दीदी को है, उतनी तुम्हें भी है।"

आज से सौ साल पहले महात्मा गांधी अपनी बालपोथी के माध्यम से माँ बनकर लड़कों को लड़कियों से समानता का बोध कराकर उनमें अच्छे संस्कार भर रहे थे। आज भी सभी माताएँ ऐसे नहीं सोच पा रही हैं, किन्तु इस तरह के संस्कार की आवश्यकता महसूस कर रही हैं। वे यह समझ रही हैं कि यदि पुरुषों को सभ्य बनाना है तो बचपन से ही भाई–बहन का लालन पालन एक समान हो ताकि बचपन से ही वे अपनी बहनों को दबाकर एक उजड्ड प्राणी न बने।

महात्मा गांधी का मानना था कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा सद्गुण होते हैं। स्त्रियों के अन्दर त्याग, सहनशीलता, विनय और स्वाभाविक रूप से अहिंसक वृति मौजूद रहती है। उनमें क्षमाशीलता है, लेकिन वे साथ ही साथ यह भी मानते थे कि पुरुष समाज ने उनके इस गुणों का बहुत दुरूपयोग किया है। इसी से महात्मा गांधी ने स्त्रियों से कहा कि आप हृदय से पुरुषों को क्षमा करें, किन्तु उनके दुर्गुणों से असहयोग करें। अपनी स्थिति खुशामदी मनुष्यों की तरह नहीं रखें और साथ ही साथ पुरुषों के पशुबल स्वरूप उपजी हुई हिंसा को अपने जीवन में कभी भी स्थान न दें।

महात्मा गांधी ने स्त्रियों में रहने वाले दुर्गुणों के लिए सबसे ज्यादा दोष स्त्रियों के दंभ को बताया। उनका मानना था कि स्त्रियाँ करना कुछ चाहती है और करती कुछ और हैं, ताकि लोग उन्हें अच्छी कहें, इससे उनका आत्मबल और व्यक्तित्व बहुत कमजोर हो जाता है। उनका कहना था–तुम अच्छी बनो न कि ये सोचो कि लोग तुम्हें अच्छा मानें। दुनियाँ की कोई भी शक्ति तुम्हारे स्वाभिमान का निरादर नहीं कर सकती। यदि तुम स्वयं अपना आदर करो।

आज आधुनिकता का दंभ भरती स्त्रियाँ अपने कानों में एक–एक छेद की जगह तीन–तीन, चार–चार छेद करवा रही हैं। महात्मा गाँधी ने इसकी तुलना नरवध से की है। महात्मा गांधी ने स्त्रियों की गहनों के प्रति आसक्ति देखकर यही माना है कि यह भी पुरुषों द्वारा उनके मन में भरी हुई विकृति है। इस विकृति ने स्त्री को एक संपूर्ण मनुष्य बनने की जगह सजावटी गुड़िया बनने के लिए मजबूर कर दिया है। जब वे अस्पृश्यता उन्मूलन एवं चरखे के लिए पैसे इकट्ठे कर रहे थे तो उस समय कितनी ही स्त्रियों के गहने उतारते वक्त उसके नीचे बैठी गंदगी को देखकर महात्मा गांधी को स्त्रियों के गहनों के प्रति मोह और अज्ञानता को देखकर क्षोभ हुआ कि हाय! पुरुषों ने इन्हें क्या से क्या बना दिया।

यह प्रकृति का नियम है कि हर मनुष्य सुंदर लगना चाहता है। किन्तु उस सौन्दर्य का क्या मतलब जो हमारे शरीर और आत्मा को कमजोर बना दे? क्या स्त्रियों का सिर्फ यही कर्त्तव्य है कि वे पुरुषों को ज्यादा आकर्षक एवं सुन्दर दिखें? गहनों के नाम पर स्त्रियों ने अपना बहुत शोषण होने दिया है और अपनी आत्मा तक के स्तर को बहुत नीचे गिराया है।

फैशन के नाम पर आज जो शरीर प्रदर्शन हो रहा है, उसे क्या कहेंगे? यह भी पुरुषों द्वारा स्त्रियों के प्रति साजिश ही है, जो स्त्रियाँ खुशी–खुशी होने दे रही हैं। पहले पर्दे के नाम पर स्त्रियों को ढँक कर शोषण किया गया और आज फैशन के नाम पर अधनंगे जिस्मों की नुमाइश कराकर शोषण हो रहा है।

महात्मा गांधी अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में सिर्फ बाल–विधवा–विवाह के पक्ष में ज्यादा नजर आते हैं, किन्तु बाद में उनके नजरिये में बदलाव आया। प्रारम्भ में उन्हें लगता था कि यदि कोई विधवा ब्रह्मचर्य का पालन करती है तो यह उसकी आत्मोन्नति के लिए श्रेयस्कर होगा। क्योंकि महात्मा गांधी सत्य और अहिंसा की तरह ब्रह्मचर्य को भी आत्म–साक्षात्कार या मोक्ष के लिए आवश्यक मानते थे। किन्तु जब गांधी जी ने देखा कि पुरुष अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद श्मशान से लौटते ही निर्लज्जों की तरह दूसरी शादी की तैयारी करने लगते हैं, तो उन्हें लगा कि सिर्फ स्त्रियों से ही ब्रह्मचर्य की आशा क्यों रखी जाए। उन्हें लग गया कि ये पुरुषों की चालाकी है। उन्होंने स्त्रियों पर विधवा के इस स्वरूप को जर्बदस्ती लादा है। इसी से एक सज्जन के यह पूछने पर कि आखिर किसी भी विधवा की शादी की उम्र की सीमा क्या होगी? गांधी जी ने तपाक से उत्तर दिया–'वही उम्र सीमा जो पुरुषों की होगी।'

महात्मा गांधी की नजरों में 'बाल–विधवा' शब्द ही विसंगति पूर्ण था। यदि वह विधवा है तो बाल कैसे और यदि बाल है तो विधवा कैसे ? उन्होंने सभी बाल–विधवाओं के माता–पिता से आग्रह किया

कि आपलोग अपनी पुत्रियों का पुनर्विवाह करें क्योंकि वैसे भी पूर्व में किया हुआ विवाह, विवाह था ही नहीं।

महात्मा गांधी को अपने देश की परंपरा और संस्कृति पर गौरव था, किन्तु कुरीतियाँ, कुपरम्पराएँ, और कुसंस्कार के प्रति विद्रोहात्मक दृष्टिकोण था। उनका मानना था कि विधवाओं की स्थिति जितनी इस देश में दर्दनाक है उतनी पूरी दुनियाँ में नहीं। हालाँकि दूसरी ओर प्रौढ़ पवित्र विधवाओं, जिन्होंने पति की मृत्यु के बाद वैधव्य को अपनी शक्ति मानकर अपने पति के महान कार्यों को आगे बढ़ाया है, सराहना भी की है। महात्मा गांधी की दृष्टि में सती नारी का मतलब भी यही था। वह नहीं, जो आत्महत्या की चिता सजा कर सती के नाम से प्रस्तुत किया जाता है।

महात्मा गांधी स्त्रियों को अबला कहे जाने के सख्त विरोधी थे। उन्होंने अपने जीवन भर यह कभी नहीं माना कि स्त्रियाँ अबला होती है। हाँ, उन्होंने यह माना कि उनमें पुरुषों की अपेक्षा पशुबल कम होता है। उनके अनुसार उन्होंने जहाँ तक शास्त्र और साहित्य पढ़ा और समझा है तथा ऐतिहासिक घटनाओं को भी जाँचा परखा है, कहीं भी किसी पुरुष ने किसी स्त्री के शील की रक्षा नहीं की है। राम ने सीता के शील की रक्षा नहीं की, बल्कि सीता ने खुद अपने आत्मबल के द्वारा रावण से अपनी रक्षा की और द्रौपदी के शील की रक्षा भी उनके पाँच पतियों ने नहीं की, बल्कि स्वयं द्रौपदी ने अपने आत्मबल के द्वारा किया। इसी से महात्मा गांधी का मानना था कि स्त्रियों के अंदर इतना आत्मबल होना चाहिए कि बलात्कारी भी उसके समक्ष झुक जाएँ। इसी से उन्होंने स्त्रियों से कहा कि वे राम–नाम का जप करके उसे हृदयस्थ कर लें, ताकि उनका आत्मबल इतना सुदृढ़ हो जाए कि वे रावण जैसे शत्रु का भी सामना कर सकें।

महात्मा गांधी ने अपनी मानस पुत्रियों में आत्मबल कूट–कूट कर भर दिया। वे अकेली कहीं भी आ जा सकती थी। जब हिन्दू–मुस्लिम दंगे हो रहे थे, मृदुला साराभाई लौहार में अकेले दंगे

में जूझ रही थीं। भारत में कहीं अमस्तुलाम तो कहीं सुशीला नैयर तो कहीं राजकुमारी अमृत तो कहीं मणि पटेल... जैसी हजारों पुत्रियाँ अलग–अलग मोर्चे पर जूझ रही थीं।

महात्मा गांधी ने देशभर की स्त्रियों से कहा कि तुम्हें क्यों भयभीत होकर घर में दुबक जाना चाहिए? किसी भी तरह के बलात्कार की घटना को वे एक दुर्घटना मानते थे। क्या सड़क, रेल या हवाई यात्रा के दौरान होने वाली दुर्घटनाओं की वजह से हमलोग यात्रा करना छोड़ देते हैं? उन्होंने स्त्रियों से कहा कि क्या तुमलोग समझती हो कि सारे पुरुष जानवर हैं? बलात्कार की घटना को अंजाम देने वाले विकृत पशु कितने हैं? क्या उन विकृत पुरुषों के भय से, जो बहुत ही कम संख्या में हैं तुमलोगों को घर में दुबक कर बैठ जाना चाहिए। महात्मा गांधी ने हिरणी बनी हुई स्त्रियों के अंदर आत्मबल पैदा कर ऐसी वीरांगना बना दिया कि वे सब न तो अंग्रेजी पुलिस से डरती थी, न शराबियों से, न दंगाइयों से, आत्मबल से लबालब भरी हुई स्त्रियाँ जैसे शस्त्रविहीन शक्ति स्वरूपा बन गई थीं।

विवाह को महात्मा गांधी एक धार्मिक कृत्य मानते थे साथ ही संयम से ब्रह्मचर्य पालन का एक माध्यम भी। उन्होंने विवाह को अति आवश्यक कार्य का दर्जा नहीं दिया है। उन्हें अविवाहित लड़कियाँ, जो आत्मबल से भरपूर होकर स्वावलंबी बनकर जिंदगी गुजारती थीं बेहद पसंद थी। दहेज देकर विवाह करने की अपेक्षा लड़कियों को अपने स्वाभिमान की रक्षा हेतु विवाह न करने का संकल्प लेने का आह्वान महात्मा गांधी ने किया। स्वाभिमान से बढ़कर विवाह का स्थान नहीं हो सकता। उनकी दृष्टि में दहेज–उन्मूलन का एकमात्र उपाय यही है कि लड़कियाँ दहेज–लोलुपों से विवाह करने से पूर्ण रूपेण इंकार कर दें। यदि कुछ सौ लड़कियाँ भी दहेज की बलिवेदी पर चढ़ने से इंकार कर दें तो दहेज रूपी दानव के धराशाई होते देर नहीं लगेगी। उन लड़कियों का त्याग बेकार नहीं जाएगा। संपूर्ण स्त्री जाति के लिए सम्मान से जीने का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

महात्मा गांधी लड़कियों के विवाह की आयु सीमा पचीस वर्ष तक मानते हैं। वैसे तो उनका मानना है कि लड़का हो या लड़की, वासना के दलदल से जितना ही दूर रह सके, उतना रहना चाहिए। लड़कियों के ऐसे अभिभावकों को, जो बेटियों को बिना शिक्षा–दीक्षा दिए सिर्फ इस बात के लिए पालन–पोषण करके बड़ी करते हैं कि इसकी शादी कर सकें, देखकर महात्मा गांधी हृदय से व्यथित हो जाते थे। क्या लड़कियों का जन्म सिर्फ इसीलिए हुआ है कि वे विवाह करके संतति प्रजनन का माध्यम बनें ?

महात्मा गांधी ने कभी स्त्री जाति की पूर्णता माँ बनना नहीं माना है। उनकी दृष्टि में स्त्री हो या पुरुष आत्मोन्नति ही उनके जीवन का लक्ष्य होना चाहिए। गांधी जी ने माताओं से भी कहा कि वे यह न समझें कि बच्चे उनसे दूर होते ही मुरझा जाएँगे, या माँ अपने बच्चों के बिना रह ही नहीं सकती। यह सोच माँ का मातृत्व या ममत्व नहीं, बल्कि मोह है। महात्मा गांधी जी ने अपनी पढ़ाई कर रही पुत्रवधू को अपने बीमार बच्चे को जाकर देखने को भी अनावश्यक माना। जब बच्चे की देखभाल उसकी नानी कर रही हैं तो सिर्फ देखने के लिए जाना फिजूल था। हालाँकि उन्होंने अपनी पूत्रवधू से स्वतंत्र निर्णय के लिए कहा।

महात्मा गांधी स्त्री–पुरुष की समानता से कम किसी बात पर समझौता नहीं करना चाहते थे। उनकी नज़रों में भारत वर्ष में सारा व्यापार सिर्फ आधी पूँजी में हो रहा था और इस देश का दुर्भाग्य तब तक दूर नहीं हो सकता था, जब तक वह पूरी पूँजी से व्यापार न करे।

महात्मा गांधी ने विवाह के समय सप्तपदी में दुहराये जाने वाले उन शब्दों का भी विरोध किया जिसमें पति को पत्नी का परमेश्वर और गुरु कहा गया है। उनका मानना था कि पति मित्र तो हो सकता है, किन्तु गुरु और परमेश्वर नहीं। उनकी इच्छा थी कि आश्रम में या अन्य जगहों पर भी होने वाले विवाहों से इन दानों आपत्तिजनक शब्द परमेश्वर और गुरु को हटा देना चाहिए।

महात्मा गांधी के हृदय में स्त्रियों के प्रति इतनी अधिक पीड़ा और वेदना थी कि स्त्रियों और पुरुषों में इतना विभेद क्यों है? उन्हें भी वही स्वतंत्रता और समानता क्यों नहीं, जो पुरुषों को प्राप्त है? इन्हीं बातों से आहत गांधी जी से जब एक पति ने अपनी पत्नी के ऊपर दूसरे से संबंध होने की शिकायत की तो उन्होंने कहा कि भारत में लाखों स्त्रियाँ इस दुख को चुपचाप सहती हैं तो यदि हम पुरुष भी इस बात को झेलें तो क्या गलत है ?

महात्मा गांधी की बहू निर्मला गांधी के यह कहने पर कि वे अपने पति रामदास से पूछकर बताएँगी, गांधीजी का यह कहना कि तुम अपने पति की गुलाम नहीं हो बल्कि अपने निर्णय लेने के लिए पूर्ण स्वतंत्र हो, यह उदगार आधुनिक युग के श्वसुर के लिए अनुकरणीय है। प्रायः स्त्रियों के सास श्वसुर अपनी पुत्र वधुओं से यही अपेक्षा रखते हैं कि वे उनके पुत्र की आज्ञाकारिणी और अनुगामिनी रहे।

आखिर स्त्रियों को स्वतंत्रता कहाँ तक दी जाए, के सवाल पर महात्मा गाँधी का कहना था कि यदि कोई पतलून पहनकर शिकार करने जाना चाहती है तो जाए और यदि वह आपके साथ फिल्म देखने नहीं जाना चाहती तो नहीं जाए और यदि वह अकेले जाना चाहती है तो जाए यानि आप उसपर किसी तरह का अंकुश नहीं लगा सकते, क्योंकि वह आपकी सहयोगिनी है न कि आपकी गुलाम! वह खुद अच्छा और बुरा सोच सकती है। आज भी कितने ही घरों में कलहपूर्ण वातावरण का मुख्य कारण है—पुरुषों का अपना स्वामित्व दिखाना। स्वामित्व का यह राग उन पुरुषों को भी मन से खोखला बना रहा है जो अपने स्वामित्व को स्थापित करने में सफल हो जाते हैं, क्योंकि यदि वे अपने मकसद में कामयाब हो भी जाते हैं तो उनके घर का व्यापार आधी पूँजी से ही चलता है और यदि सफल नहीं होते हैं तो घर की स्थिति नारकीय हो जाती है और अंत तलाक पर जाकर होता है।

प्रभावती जी के द्वारा ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ले लेने पर महात्मा गाँधी ने उनके पति जयप्रकाश नारायण से स्पष्ट शब्दों में कहा कि किसी भी व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष आत्मोन्नति करने का अधिकार है और यदि प्रभावती निर्विकार है और उसके अंदर शारीरिक संबंध बनाने की इच्छा नहीं है तो तुम उसे बाध्य नहीं कर सकते। शारीरिक संबंध तभी बन सकते हैं जब दोनों की रजामंदी हो।

महात्मा गांधी तुलसीदास जी के भक्त थे, किन्तु उन्होंने उनकी लिखी उन चौपाइयों को नकार दिया जिसमें स्त्री निन्दा थी। गांधी जी का कहना था कि मैं तुलसीदास जी का भक्त हूँ किन्तु अंधभक्त नहीं हूँ। प्रथम दृष्टि में मुझे तो नहीं लगता कि तुलसीदास ने स्त्रियों की इतनी निंदा की होगी, जरूर यह क्षेपक होगा और यदि स्वयं तुलसीदास जी ने भी लिखा है, तो यह गलत है। चूँकि तुलसीदास का मुख्य उद्देश्य भक्ति और अपने इष्ट के प्रति पूर्ण समर्पण को अभिव्यक्त करने का था, इसी से वे इन बातों पर विचार नहीं कर सके और तथाकथित लोक प्रचलित बातों को अपने काव्य में स्थान देकर स्त्री—सम्मान का ख्याल नहीं रखा।

महात्मा गांधी का तो यहाँ तक कहना था कि दुनियाँ के सारे धार्मिक और सामाजिक नियम स्त्रियों के लिए बनाए गए हैं किन्तु उस नियम को बनाने में स्त्रियों का कोई योगदान नहीं है। इस कारण वे उसे मानने के लिए बाध्य नहीं हैं।

महात्मा गांधी ने अपने आश्रम में गाए जाने वाले भजनों में इस बात का विशेष ख्याल रखा कि यहाँ एक भी ऐसे भजन न गाए जाएँ जिसमें स्त्रियों की निन्दा होती है।

हमारे बहुत सारे तथाकथित शास्त्रीय नियम ऐसे हैं जो स्त्रियों को सामान्य से असामान्य बना दे। प्राकृतिक नियम के तहत रजस्वला होना भी स्त्री को अछूतों की श्रेणी में ढकेल देता है। इसी से एक स्त्री के यह पूछने पर कि मैं इस अवस्था में पुस्तक को पढ़ सकती हूँ या नहीं, गांधी जी के मुँह से बरबस निकल पड़ा था—हा हतभाग्य! भारत देश की स्त्रियाँ को यह सवाल पूछना पड़ता है।

हमारे मन मस्तिष्क पर ऐसे संस्कार पड़ चुके हैं कि आज भी अधिकांश स्त्रियाँ रजस्वला होने को धार्मिक विधि—विधानों से जोड़ती

है, जो सिर्फ एक प्राकृतिक और शारीरिक विधान है। महात्मा गांधी ने महामना मालवीय जी के इस अनुरोध को विनम्रता पूर्वक किन्तु दृढ़ता से साथ मानने से इंकार कर दिया कि रजस्वला होने का धार्मिक विधि–विधान से कोई संबंध है।

जब महात्मा गांधी पहली बार चम्पारण गए थे, उन्हें वहाँ की समस्याओं के बारे में एक सूची सौंपी गई थी। उस सूची पत्र को देखकर महात्मा गांधी चौंक गए कि क्या यहाँ स्त्रियों की कोई समस्या नहीं है? क्योंकि उसमें स्त्रियों की समस्या से संबंधित कोई बात नहीं थी, और न वहाँ कोई स्त्री उपस्थित थी। तब गांधी जी ने कस्तूरबा से कहा तुम घरों के अंदर जाकर देखो कि स्त्रियों की क्या अवस्था है? कस्तूरबा ने एक घर के अंदर जाकर पीने के लिए पानी माँगा तो एक महिला लोटे में पानी लेकर आई। कस्तूरबा के यह पूछने पर कि घर में सिर्फ तुम ही अकेली महिला हो तो उसने सिर झुका लिया, कुरेदने पर बताया कि दो महिलाएँ और हैं किन्तु साड़ी सिर्फ एक है, बाकी समय में हमलोग सिर्फ छोटे–छोटे अंगोछे के आकार के कपड़ों से अपने अंग ढँके रखती हैं। कस्तूरबा के मुख से यह सुनकर गांधीजी रोने लगे। वे करूणा से विह्वल हो गए कि स्त्री के दर्द को, उसकी तकलीफों को क्या ये नेता लोग गिनते तक नहीं? गाँधी जी ने वहाँ दुर्गा देसाई से लेकर अन्य देशी और विदेशी महिलाओं का दल भेजा जिन्होंने वहाँ शिक्षा एवं स्वास्थ्य के कार्यक्रम चलाए और लोगों को जागरूक बनाया। वहाँ विद्यालय खोले गए तथा चरखा के माध्यम से उन नंगे बदनों को ढँका गया। इसतरह की घटनाओं के गवाह बनने के बाद ही, और भी न जाने कितने ही स्थानों पर अधनंगी स्त्रियों को देखकर महात्मा गाँधी, जो स्त्रियों के लिए माता–पिता दोनों का हृदय रखते थे, खुद अधनंगे फकीर बनकर हमारे राष्ट्रपिता बन गए।

महात्मा गांधी का इस बात से विरोध था कि स्त्रियाँ अपना पूरा समय चूल्हे–चौके और अपने बच्चों में गँवा दें। उनकी दृष्टि में माता–पिता बच्चे के पृथ्वी पर आने के सिर्फ़ एक माध्यम है, न कि उनके विधाता। इसी से उनसे अत्यधिक मोह रखकर स्त्रियों को

अपनी आत्मा का हनन नहीं करके अपना कर्त्तव्य करना चाहिए। रसोई का काम स्त्री और पुरुष दोनो को मिलकर करना चाहिए और जितने कम से कम समय में भोजन तैयार हो, हमेशा उसी प्रक्रिया को अपनाना चाहिए।

महात्मा गांधी का मानना था कि आखिर वह ऐसा कौन सा क्षण था जब पुरुषों ने चालाकी से स्त्रियों को चौके–चूल्हे के अंदर घुसा दिया। जबकि दुनियाँ में ऐसा कोई काम नहीं, जिसे सिर्फ स्त्री कर सकती है या सिर्फ पुरुष कर सकता है।

महात्मा गांधी ने अपना एक नया और मौलिक शब्द दिया 'आध्यात्मिक–पत्नी'। इस नए शब्द पर काफी बवाल मचा क्योंकि लोगों ने आध्यात्मिक माता, पिता, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री का नाम तो सुना था किन्तु आध्यात्मिक पत्नी! आध्यात्मिक पति भी सुना जाता रहा है, जैसे कुछ साधिकायें कृष्ण को पति मानती है, तो कुछ राम को। कोई–कोई पुरुष भी गोपी–भाव और सखी–भाव में ईश्वर को पति मानकर ईश्वरोपासना करते हैं। कुछ साधक–साधिकाएँ तो सन्यासी चैतन्यदेव को और कोई–कोई विवेकानन्द को भी अपना पति मानती हैं, जिन्हें मैने देखा है। किन्तु आध्यात्मिक पत्नी बिल्कुल मौलिक और नूतन शब्द लेकर गांधी जी ने इस रूप और संबंध को एक अभूतपूर्व ऊँचाई, एक अनूठे मुकाम पर पहुँचाने का प्रयास किया। उन्होंने आध्यात्मिक पत्नी का अर्थ किया कि यह शब्द या संबंध स्त्री और पुरुष की वह सहधर्मिता है, जिसमें शारीरिक पक्ष का सर्वथा अभाव होता है, यह केवल दो ऐसे व्यक्ति के बीच संभव है जो मनसा, वाचा और कर्मणा, ब्रह्मचारी हो। यह दो समान आत्माओं का मिलन है। यह शारीरिक संबंधों से परे होती है और मृत्यु के उपरांत भी कायम रहती है। यह सहधर्मिता तो तभी संभव है जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी तरह की वासना न हो।

महात्मा गांधी का पति–पत्नी के परस्पर संबंध को लेकर स्पष्ट और पारदर्शी दृष्टिकोण था, कि वे एक गाड़ी के दो समान पहिए हैं।

चूँकि उनके संपूर्ण जीवन में कथनी और करनी में कोई फर्क नहीं था। इसी से इस संबंध के बारे में भी कहे गए वाक्यों में फर्क होने का सवाल ही नहीं था। हालाँकि आज भी अपने भाषणों और लेखों में तो बहुतेरे लोग पति–पत्नी को एक ही गाड़ी के दो पहिए बोलते और लिखते हैं किन्तु कहने एवं लिखने वाले की दृष्टि में भी वे स्वयं यानि पुरुष रेल का पहिया है तो स्त्री बैलगाड़ी, का वह भी जीर्ण–शीर्ण।

महात्मा गांधी ने स्वयं अपने बारे में कहा है कि प्रारम्भ में मेरे अंदर भी पति होने का दंभ था और वह पशुबल भी जिससे पति अपनी पत्नी पर स्वामित्व जताते हैं। किन्तु सहृदय गांधी चाहते हैं कि जिस पशुबल को त्यागकर वे अपनी जिंदगी में सच्चा आनंद पा सके वैसा ही आनन्द और भी पुरुष पा सकें।

महात्मा गांधी वासना को भी पुरुष का पशुबल ही मानते थे। उन्होंने जब तीस वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचर्य पालन करने का निश्चय किया, तो उन्हें लगा कि आज वे अपनी पत्नी को ज्यादा आदर और सम्मान दे पा रहे हैं। इसी से उन्होंने कहा भी है कि जब मैंने बा को काम–वासना की नजर से देखना छोड़ा तभी से मुझे विवाहित जीवन का सच्चा सुख मिलने लगा।

महात्मा गांधी का कहना है कि पता नहीं ऐसी भ्रांतियाँ किसने फैला दी कि बलशाली पति अपनी पत्नियों से नहीं दबते। भीम से बलशाली पुरुष भला कौन हो सकता है? लेकिन वह भी द्रौपदी से बहुत ही डरता था।

सीताराम में सीता का नाम पहले बोलने का कारण महात्मा गांधी यही मानते हैं कि सीता में राम से अधिक गुण थे।

अपने सतीत्व के आत्मबल से रावण जैसी राक्षसी शक्ति के सामने सीता न तो झुकी, न गिड़गिड़ायी और रावण को अपनी सीमा का अतिक्रमण करने का साहस नहीं करने दिया। सदियों पहले लोगों ने सीता के इस रूप को हृदयस्थ किया होगा। इसी वजह से उनका नाम पहले लेने की धारा बहती चली आ रही है।

आश्रम में एक पति की इस शिकायत पर कि उसकी पत्नी एक सप्ताह के लिए सेवा–कार्य हेतु गई थी, किन्तु लगभग एक महीना बीत जाने पर भी नहीं आई है। महात्मा गांधी ने उसे कहा कि तुम्हारी पत्नी एक समझदार महिला है। उसने वहाँ रूकना ठीक समझा होगा उसी से रूक गई होगी। वह तुम्हारी गुलाम नहीं है कि तुम्हारी इच्छा पर ही उठे, चले। यदि तुम कहीं किसी काम के लिए जाते हो और वहाँ आवश्यक समझते हो तो रूक सकते हो, तो फिर तुम्हारी पत्नी क्यों नहीं? हाँ जब तक लड़कियाँ या लड़के बच्चे हैं, उन्हें अभिभावकों की जरूरत है। किन्तु बच्चों के भी बड़े हो जाने पर माता–पिता को भी अपने आपको उनका स्वामी मानना छोड़ देना चाहिए।

महात्मा गांधी पुत्रियों को हमेशा आजादी देने की बात कहते थे इसपर एक छोटी उम्र की बालिका ने इसे ही अपना हथियार बनाकर माता–पिता की सही बातों को भी मानने से इंकार कर दिया। उस बालिका का कहना था कि मैं अपने पत्र उन्हें क्यों दिखाऊँ और उनके बनाए हुए जेल में क्यों रहूँ? महात्मा गांधी ने उस बालिका से कहा कि तुम जिस घर में रहती हो, उसके गेट पर दो चौकीदार को रख देती हो ताकि कोई तुमसे मिलने आए तो तुम्हें खबर करें और तुम निश्चिन्त होकर अपनी दिनचर्या में मशगूल रहो और दूसरी स्थिति है, तुम्हें सैनिकों ने पकड़कर जेल में डाल दिया है और तुम अपनी मर्जी से कुछ नहीं कर पाती, क्या दोनों स्थितियाँ एक सी है? तुम्हारे माता–पिता ईश्वर द्वारा भेजे गए दो पहरेदार हैं। जो तुम्हारी अच्छाई–भलाई के साथ तुम्हारे सभी प्रकार के सुखों के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

इस जबाब ने बालिका के मन के सभी द्वन्दों को समाप्त कर दिया। यह एक ऐसी दलील है जो हमारी पुत्रियों के बहकते कदम, कम उम्र में नासमझी के कारण माता–पिता को ही दुश्मन मान लेने की गलतफहमी और किशोरावस्था के पागलपन को बहुत हद तक दूर करने का सामर्थ्य रखती है। यह उदाहरण समझदार बालिकाओं का मार्गदर्शन करेगा।

महात्मा गांधी की दृष्टि में स्त्रियाँ बहुत ही अच्छी प्रबन्धक हैं क्योंकि गृह–प्रबन्ध की कला उनके अंदर जन्मजात होती है। किन्तु गाँधी जी को इस बात का अफसोस था कि वे अपनी प्रबंधन क्षमता को सिर्फ घर की चहारदीवारियों तक सीमित क्यों रखती है? क्यों नहीं वे समाज और राष्ट्र को उस क्षमता से लाभान्वित करती है?

आज की स्त्रियों की प्रबंधन कुशलता एवं समाज तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी दी हुई सेवाओं को देखकर महात्मा गाँधी को बहुत प्रसन्नता होती, किंतु विलासिता और चकाचौंध के पीछे दौड़ती–भागती उनकी जिंदगी को देखकर वे दुखी भी होते। उनके अनुसार सादगी, त्याग, समर्पण, सेवा के द्वारा ही मनुष्य का उत्थान हो सकता है और भगवान की सबसे सुन्दर कृति स्त्री भी इसी मार्ग पर चलकर और भी सुगंधित, पुष्पित और पल्लवित हो इस धरा को सत्यं शिवं सुन्दरं बना सकती है। 1

स्त्री जागरण

पवित्र स्त्रियाँ न हो तो पवित्र पुरुषों का होना असंभव है। जब तक सार्वजनिक जीवन में भारत की स्त्रियाँ भाग नहीं लेतीं तब तक हिन्दुस्तान का उद्धार नहीं हो सकता। जिस स्वराज्य में स्त्रियों का पूरा–पूरा भाग न हो, वह मेरे लिए निकम्मा स्वराज्य है। पवित्र मन और हृदय रखने वाली स्त्री सदा साष्टांग नमस्कार करने योग्य है।

भगिनी समाज का अध्यक्ष पद तो किसी स्त्री को देना ही उचित है। जैसे दूसरे की तपस्या से हम स्वर्ग नहीं जा सकते, वैसे ही पुरुषों के द्वारा स्त्री–जाति की उन्नति नहीं की जा सकती। कोई भी व्यक्ति या जाति अपनी शक्ति से ही उन्नति कर सकती है। यह सिद्धांत कोई नया सिद्धांत नहीं है। किन्तु हम प्रायः इसे कार्यान्वित करने में चूक जाते हैं।

मैं स्त्रियों और पुरुषों दोनों के निकट संपर्क में रहता हूँ और यह बात मेरी समझ में आ गई है कि स्त्रियों की सेवा के कार्य में जब तक स्त्रियाँ न आए तब तक मैं उस कार्य को नहीं चला सकता।

पुरुष अपनी मूढ़तावश स्त्री के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भूल जाता है, तो क्या इसलिए स्त्री को भी स्त्री के प्रति अपना फर्ज भूल जाना चाहिए?

सामान्य स्त्रियों के प्रति प्रथम कार्य यह है कि उन्हें उनकी दुरावस्था का ज्ञान कराया जाए। उन्हें दुरावस्था का ज्ञान अभी सामान्य शिक्षा की प्रतीक्षा किए बिना ही कराया जा सकता है।

स्त्रियों का पहला कर्त्तव्य पुरुष की ओर से जाने–अनजाने किए जाने वाले अत्याचारों से मुक्ति पा भारत को श्री संपन्न और वीर्यवान बनाना है।

जिस स्त्री को अपने अस्तित्व का भान हो गया है, उसका अस्तित्व उसके आत्मबल से सुशोभित है। अपने शरीर की दुर्बलता को स्वीकार करके जो स्त्री भय से भी दुर्बल बन जाती है, वह अपने स्त्रीत्व को सुशोभित नहीं कर सकती। हमारे शास्त्र हमें बतलाते हैं कि सीता, द्रौपदी आदि स्त्रियों ने अपने तेज से दुष्टों को भयभीत कर दिया था। जैसे हाथी का शरीर बल मनुष्य के बुद्धि बल के आगे कुछ नहीं कर पाता वैसे ही मनुष्य अर्थात स्त्री–पुरुष दोनों के आत्मबल के आगे मनुष्य का बुद्धिबल तथा शरीरबल तृणवत है।

ऐसा आत्मबल किस तरह आए? इसके लिए किसी बड़े प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है। ईश्वर पर विश्वास करके हमें किसी के शरीर बल से नहीं डरना चाहिए। वास्तविक बल राक्षसी शरीर प्राप्त करने में नहीं है। वह तो मानसिक दृढ़ता, आत्मा की पहचान तथा मौत के प्रति निडर भाव रखने में है।

हिन्दुस्तान की मुक्ति स्त्रियों की उन्नति में निहित है। धर्म को बनाए रखना न ब्राह्मणों के हाथ में है न पुरुषों के, वह तो स्त्रियों के हाथ में है।

आपकी वाणी और कार्य में किसी प्रकार का छल नहीं है। आपका बलिदान सर्वथा शुद्ध है। उसमें क्रोध या घृणा का लेश भी नहीं है। मैं आपके सामने यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि आपने स्वतः प्रेरित होकर प्रेम पूर्वक आंदोलन के प्रति जो अनुकूल प्रतिक्रिया दिखाई उससे मुझे विश्वास हो गया कि ईश्वर हमारे साथ है। हमारा संघर्ष आत्मशुद्धि का संघर्ष है, यह इसी बात से प्रमाणित हो जाता है कि भारत की लाखों महिलाएँ सक्रिय रूप से इसकी सहायता कर रही हैं।

"वेश्या शब्द पर—पुरुषों के हाथों जो दुष्कर्म हुए हैं उनमें कोई इतना जघन्य और पाशविक नहीं है, जितना नारी जाति का यह दुरूपयोग। स्त्रियों को मैं अबला नहीं बल्कि मनुष्य जाति का बेहतर अर्द्धांश मानता हूँ। पुरुषों और स्त्रियों में मैं स्त्रियों को ज्यादा सुसंस्कृत मानता हूँ, क्योंकि वे आज भी सारे सद्‌गुणों की अगार है। उनमें त्याग है, मूक बलिदान की शक्ति है, नम्रता, आस्था, ज्ञान आदि सबकुछ है। पुरुष अहंकार पूर्वक स्त्री से ज्यादा ज्ञान रखने का दावा करता है, किन्तु स्त्री की सहज बोध की शक्ति उसके इस ज्ञान से अक्सर ज्यादा सही साबित हुई है। हम जो सीता का नाम राम के पहले या राधा का कृष्ण के पहले लेते हैं, सो अकारण नहीं है।

हमें भारत में जो काम करने हैं, उसमें स्त्रियों की शिक्षा का काम पहला है। यदि हम स्त्रियों को शिक्षा दें, तो वे अपने शील, सम्मान की रक्षा कर सकती है।

नारी को दुर्बलता की मूर्ति माना गया है। वह शरीर से दुर्बल भले ही हों। परंतु आत्मा से वह सशक्त से सशक्त व्यक्ति के समान हो सकती है।

मुख्य बात तो हृदय की पवित्रता है। जिसका मन और हृदय पवित्र है वह सती सदा पूज्य है। हम जैसे भीतर होते हैं बाहर भी वैसे ही प्रकट होते हैं। यही प्रकृति का नियम है। यदि हम भीतर से मलिन हो तो बाहर से भी वैसे ही दिखाई देंगे। दृष्टि और वाणी ये बाह्य—चिन्ह् है किन्तु जानने वाला गुण—अवगुण की पहचान इन बाह्य चिन्हों से भी कर लेता है।

भगवान का नाम लेकर सूत कातिए। भगवान का नाम लेकर सूत कातने का अर्थ है गरीब बहनों के लिए कातना। दरिद्र को दिया गया दान ईश्वर को पूजा चढ़ाने जैसा है। दान तो वह है, जो दरिद्र को सुख पहुँचाए। आप चाहे जिसको पैसा लुटायें उसका तो यही अर्थ होगा कि आप अपनी सनक पूरी करते हैं।

मैं सदा कहता आया हूँ कि जब तक सार्वजनिक जीवन में भारत की स्त्रियाँ भाग नहीं लेती तब तक हिन्दुस्तान का उद्धार नहीं हो सकता। सार्वजनिक जीवन में वही भाग ले सकेंगी जो तन और मन से पवित्र हैं। जिनके तन और मन एक ही दिशा में—पवित्र दिशा में चलते जा रहे हों। जब तक ऐसी स्त्रियाँ हिन्दुस्तान के सार्वजनिक जीवन को पवित्र न कर दें, तब तक राम राज्य संभव नहीं है।

जब स्त्री जाति हम पुरुषों के जाल से मुक्त होकर अपनी आवाज बुलंद करेगी और जब वह अपने लिए बनाए पुरुष कृत विधि विधानों के खिलाफ बगावत का झण्डा खड़ा करेंगी, तब उसका वह बलवा—शांतिमय होने पर भी—किसी तरह कम कारगर न होगा।

पुरुषों ने स्त्रियों की जो उपेक्षा की है, उनका जो दुरूपयोग किया है, उसके लिए उन्हें पर्याप्त प्रायश्चित करना ही है। मगर सुधार का रचनात्मक कार्य तो उन्हीं बहनों को करना पड़ेगा, जो अंधविश्वास को छोड़ चुकी है और जिन्हें इस बुराई का ख्याल हो आया है।

यह बिल्कुल सही है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों में किसी भी कुप्रथा के विरूद्ध युद्ध करने की शक्ति शेष नहीं रह गई है। इसमें शक नहीं कि समाज की ऐसी स्थिति के लिए मुख्यतः पुरुष जिम्मेदार हैं। लेकिन क्या स्त्रियाँ सारा दोष पुरुषों के माथे मढ़कर अपनी आत्मा को हल्का रख सकती हैं? क्या पढ़ी—लिखी स्त्रियों का स्त्री वर्ग के प्रति—तथा पुरुषों के प्रति भी क्योंकि वे उसकी जननी हैं—यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे सुधार का काम अपने हाथ में लें? अगर विवाह के उपरान्त वे अपने पतियों के हाथों में कठपुतलियाँ बन जाएँ और कम उम्र में दीन—हीन दिखने वाले बच्चे पैदा करने लग जाए तो वह शिक्षा जिसे वे पा रही हैं किस काम की?

आत्मा का उद्धार आत्मा ही कर सकती है। आत्मा का बंधु आत्मा ही है। स्त्रियों का उद्धार स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। इसके लिए तपश्चर्या की जरूरत है। यह बात सच है कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा तपश्चर्या की शक्ति अधिक होती है। लेकिन यह तपश्चर्या विवेकपूर्ण की जानी चाहिए। अभी तो वे मजदूरों के समान जबर्दस्ती काम करती हैं।

कोई भी दूसरा व्यक्ति स्त्रियों की रक्षा नही कर सकता, ऐसा कह सकते हैं। वे अपनी रक्षा आप ही कर सकती हैं। यदि वे सत्याग्रह सीख लें तो वे पूर्णरूप से स्वावलंबी और स्वतंत्र हो सकती हैं। फिर उन्हें किसी पर निर्भर रहने की जरूरत न रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे किसी से किसी किस्म की सहायता नहीं लें। जरूरत होने पर सहायता अवश्य लें। लेकिन यदि संसार उनकी सहायता न करे तो उन्हें ऐसा नहीं लगना चाहिए कि वे निराधार हैं। यदि हम उपलब्ध पदार्थों का उपयोग करते हुए भी अपने मन को उससे अलग रखें, तो हम स्वावलंबी ही रहते हैं, फिर भले ही हम समस्त जगत का आश्रय लें तो भी पराधीन नहीं बनते। यदि कोई आश्रय नहीं भी देता तो भी हमें लगता है कि आश्रय नहीं मिला तो कोई बात नहीं। उस समय हम क्रोध नहीं करते और न किसी की निन्दा ही करते हैं। इसका नाम ही सत्याग्रह है। हमें भयभीत नहीं होना चाहिए, यह बात हमारी बुद्धि में बैठ जाए। इतना ही पर्याप्त नहीं, हमें हृदय से ऐसा महसूस करना चाहिए। भय त्याग का मतलब यह नहीं कि हम जगत की परवाह न करें।

मैं यह अपेक्षा करता हूँ कि आश्रम में रहने वाली सारी स्त्रियाँ कोई भी कार्य बिना विचारे न करें। उसके लिए स्त्रियों को ज्ञानी होना चाहिए। आजकल तो हिन्दुस्तान में स्त्री समाज शुष्क हो गया है।

स्त्रियों को क्या करना है इसका विचार स्त्रियों को ही करना चाहिए। स्त्री और पुरुष दोनों में एक ही आत्मा है। उसमें जाति–भेद, लिंगभेद या देशभेद से कुछ अंतर नहीं पड़ता। किसी वीरांगना की जाग्रत आत्मा, हीन पुरुष की सुप्त आत्मा से हजार गुना अधिक तेजस्वी हो सकती है।

मैं ईश्वर से निरंतर प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको वीरांगना बना दे लेकिन हमारी मर्जी के खिलाफ ईश्वर भी हमें वह नहीं बना सकता जो हमें होना चाहिए। ईश्वर केवल उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करने को तैयार हैं।

जिस सभ्यता में स्त्री जाति का सम्मान नहीं किया जाता, उस सभ्यता का नाश निश्चित ही है। संसार न अकेले पुरुष से चल सकता है, न अकेली स्त्री से। इसके लिए तो एक दूसरे का सहयोग ही उपाय है। स्त्री अगर कोप करे तो आज पुरुष को नाश कर सकती है। यही कारण है कि वह महाशक्ति मानी गई है।

स्त्री–सेवा वास्तव में तो स्त्री सेविकाओं के तैयार होने पर ही होगी। इसके लिए स्त्रियों को एक साथ रहना, हिलमिलकर काम करना, एक दूसरे के स्वाभाव को सहना, स्वतंत्र विचार करना और विचारों पर साहस एवं दृढ़ता के साथ अमल करना और कष्ट–सहन करना सीखना पड़ेगा। पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों में त्याग की भावना बहुत अधिक है। लेकिन भारत वर्ष की स्त्रियों की दृष्टि अभी कुटुम्ब की संकुचित हद से आगे नहीं बढ़ रही है।

सुकन्याओं को याद रखना चाहिए कि उन्हें भारत वर्ष में स्वराज्य या रामराज्य स्थापित करने में पुरुषों के साथ–साथ काम करना है और स्त्रियों की भी दुखःद स्थिति को सुधारना उनका विशेष धर्म है।

सिर्फ वैधानिक विषमताओं को दूर करना मात्र बाहरी उपचार जैसा होगा। जैसा अधिकतर लोग समझते हैं, इस व्याधि की जड़ उससे कहीं, ज्यादा गहरी है। पुरुष की सत्ता और कीर्ति के प्रति लोलुपता ही इसका मूल कारण है और इसका इससे भी बढ़कर कारण है, स्त्री पुरुष की पारस्पारिक विषय–वासना। पुरुष सदा से शक्ति का आकांक्षी रहा है और संपत्ति पर अधिकार उसे यह शक्ति प्रदान करता है। ज्यादातर स्त्रियाँ विवाहित होती है। यद्यपि कानून उनके विरूद्ध है, तो भी उनका अपने पतियों की सत्ता और अधिकार में समान भाग रहता है तथा अपने को श्रीमान पतियों की श्रीमती

अमुक कहलाने में आनन्द और गर्व का अनुभव करती हैं। अतएव वे विषमता संबंधी सैद्धान्तिक चर्चा के समय क्रांतिकारी परिवर्त्तन के लिए अपना मत भले ही दें लेकिन जब तदनुसार आचरण का अवसर आता है तब वे अपनी इन विशेष सुविधाओं को छोड़ना नहीं चाहतीं।

पारस्परिक विषय वासना से भी स्त्री जाति के अधिकारों का जो अपहरण हुआ है, उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। स्त्री ने कई सूक्ष्म तरीकों से अनजाने में ही पुरुष पर जाल डालने का प्रयत्न किया है। इसी तरह पुरुष ने भी। स्त्री उसपर हावी न हो जाए इसलिए उसे अनजाने में पीछे रखने का प्रयास किया है, जिससे उसे सफलता नहीं मिली। फलस्वरूप स्थिति ज्यों की त्यों है। इसतरह देखा जाए तो भारत वर्ष की जागरूक बेटियों को जो समस्या सुलझानी है वह गंभीर है। उन्हें उन पश्चात्य रीति–रिवाजों की नकल नहीं करनी चाहिए, जो शायद पश्चिम के लिए अनुकूल हो। उन्हें भारत की परिस्थिति और भारतीय स्वाभाव के अनुकूल उपायों को काम में लाना चाहिए। बहनों का कर्त्तव्य है कि वे वातावरण को शुद्ध रखें, अपने निश्चयों को दृढ़ और अटल बनायें। दिग्मूढ़ता के दोष से बचें, अपनी सभ्यता और संस्कृति के सर्वोत्तम तत्व का पोषण करें और उसके दोषों को और पतनकारी तत्वों को बिना झिझक दूर करें। यह काम सीता, द्रौपदी, सावित्री दयमंती जैसी स्त्रियों के लिए ही हो सकता है, पुरुषोचित आचरण करने वाली या मिथ्या विनयी और संकोचशील नारी से कदापि नहीं हो सकता।

यदि स्त्रियों में आत्म–विश्वास आ जाए, उनकी श्रद्धा दृढ़ हो जाए तो स्त्रियाँ खुद ही जान जाएँगी कि उनके मन में जो भय था वैसा भय रखने का कोई कारण नहीं है। मनुष्य मात्र में राम और रावण रहते हैं यदि स्त्रियाँ अपने हृदय में रहने वाले राम की सहायता से काम करें तो पुरुषों में रहने वाला रावण सिर नहीं उठा सकता। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में राम देर से जागता है।

यदि स्त्री स्वयं दृढ़ता न दिखाए तो मैं उसका बचाव करना असंभव मानता हूँ। आत्मा ही आत्मा की मित्र और शत्रु है।

स्त्रियों को अंध पति प्रेम सिखाने की अपेक्षा उन्हें स्वतंत्र बनाएँ और अपने आचरण द्वारा उन्हें यह समझा दें कि उनकी आत्मा के अधिकार भी पुरुष की देह में रहने वाली आत्मा के समान हैं।

पुरुषों ने स्त्रियों के साथ अन्याय किया है और अब भी करते हैं किन्तु इसका उपाय भी अन्ततः स्त्रियों के हाथ में ही है। स्त्री स्वयं अपने आपको अबला मानना छोड़ दें तो आज ही स्वतंत्र बन सकती है।

मैंने महिलाओं को समझाने की कोशिश की है कि वे न तो अपने पति की और न माता–पिता की गुलाम हैं। न सिर्फ राजनैतिक मामलों में बल्कि घरेलू मामलों में भी। किंतु उनमें से कुछ अपने पतियों का विरोध नहीं कर पाती थीं। उपचार स्वयं स्त्रियों के हाथों में है। उनके लिए यह संघर्ष कठिन है और मैं उन्हें दोष भी नहीं देता। दोष तो मैं पुरुषों को देता हूँ। पुरुषों ने उनके विरूद्ध नियम बनाए हैं। उन्होंने स्त्रियों को अपने हाथ का खिलौना माना है। उन्होंने खिलौना बनना सीख लिया और अंत में उन्हें इस स्थिति में पहुँच जाना अच्छा और आनन्द दायक लगा। क्योंकि जब कोई गिरते हुए को घसीटता है तो उसका गिरते चले जाना अपेक्षाकृत सुखकर हो जाता है। मुझे लगता है कि अब मेरे जीवन में जो वर्ष शेष है उनमें शायद मैं स्त्रियों के मन में यह सत्य उतार सकूँ कि वे वास्तव में मुक्त हैं।

यदि आप महिलायें अपनी गरिमा और अपनी विशेष स्थिति को सचमुच समझ लें और मानवता के हित के लिए उनका पूरी तरह उपयोग करने लगे तो आप लोग मानवता को आज की अपेक्षा कहीं बेहतर बना दे सकती हैं। लेकिन पुरुषों ने आप लोगों को दासी बनाकर रखने में सुख अनुभव किया है और आप लोग खुशी–खुशी इस दासत्व को अपनाने वाली सिद्ध हुई हैं। और अंत में स्थिति यहाँ तक पहुँची है कि दास तथा दासप्रभु दोनों मानवता को पतन के गर्त में खींच ले जाने का अपराध कर रहे हैं। बालपन से मेरा विशेष कार्य यही रहा है कि नारी को उसकी अपनी गरिमा पूरी तरह अनुभव करने में समर्थ बनाएँ। एक समय था जब मैं स्वयं भी दासप्रभु था क्योंकि बा ने स्वेच्छा से दासी बनना मंजूर नहीं किया और मेरी आँखें खोल दी।

मेरी कल्पना की आदर्श महिला या आदर्श महिलाओं में से एक बनने के लिए स्त्रियों को अपनी सभी क्षमताओं का विकास करना होगा।

ध्यान देने की बात है कि पुरुष शरीर के सौन्दर्य पर कोई पुस्तक नहीं लिखी गई है। लेकिन पुरुष की पाशविक वासना को भड़काने वाला साहित्य सदा क्यों लिखा जाता है? क्या इसका कारण यह है कि पुरुष ने स्त्रियों को जिन विशेषणों से विभूषित किया है, उन्हें चरितार्थ करना स्त्रियों को अच्छा लगता है? क्या उसे यह अच्छा लगता है कि पुरुष उसके शरीर के सौन्दर्य का उपभोग करें? क्या उसे पुरुष के सामने शरीर से सुन्दर दिखना रूचता है और रूचता है तो क्यों? मैं चाहता हूँ कि शिक्षित बहनें अपने आपसे ये प्रश्न पूछकर देखें। यदि ऐसे विज्ञापन और ऐसा साहित्य उन्हें बुरा लगता है तो इनके विरूद्ध अविराम संघर्ष चलाना चाहिए। फिर तो ये चीजें पलभर में बंद हो जाएँगी। स्त्री में यदि विनाश की शक्ति है तो कल्याण की भी शक्ति उसके अंदर छिपी हुई है। मेरी यह कामना है कि वह अपनी उस कल्याणकारी शक्ति को पहचाने। यदि वह ऐसा सोचना बंद कर दे कि वह कमजोर है और पुरुषों के खेलने की गुड़िया बनने के ही योग्य है तो वह अपने लिए और पुरुष के लिए भी—चाहे पुरुष उसका पिता हो या पुत्र अथवा पति—संसार को अधिक सुखमय बना सकती है।

यदि समाज को राष्ट्रों के पागलपन भरी आपसी लड़ाइयों और समाज की नैतिक बुनियादों पर किए जा रहे नासमझी भरे प्रहारों से नष्ट होने से बचना है तो उसमें नारी को यथेष्ट योगदान करना होगा।

मैं यही कह सकता हूँ कि नारियाँ जब तक अपने नारीत्व को प्रतिष्ठित नहीं करती तब तक भारत की चतुर्दिक प्रगति असंभव है। हम जिनको अबला कहते हैं जब वे सबला बन जाएगी तभी सब अबल जन सबल हो पाएँगे।

जब तक हिन्दू समाज में सुधार करने के लिए स्त्री की समस्याओं से जूझने वाली कुछ परिश्रमी और विदुषी स्त्रियाँ नहीं होगी तब तक कोई ठोस ढंग का कानून नहीं बनाया जा सकता। मैं तो उन्हीं

स्त्रियों का मार्ग—दर्शन कर सकता हूँ, जिनमें उद्यमशीलता, योग्यता और साथ ही मेरी सहज बुद्धि के प्रति आस्था हो। जहाँ यह चीज ऐच्छिक है वहाँ हर्ज क्या है? यदि कोई पति कुष्ट रोगी हो जाता है या दुश्चरित्रता के कारण उसे गंदी बीमारी हो जाती है तो बेचारी पत्नी पर उसके साथ रहने की मजबूरी क्यों है ?

मैं भारत की नारियों के अंतःकरण को जाग्रत करने के लिए जितना कुछ कर सकता हूँ, करता रहूँगा। लेकिन मूक प्रार्थना की प्रभावकारिता में मेरी श्रद्धा दिन—दिन बढ़ती जा रही है। यह अपने आप में एक कला है—कदाचित सबसे ऊँची कला जो अत्यन्त सूक्ष्म और अनवरत अभ्यास की अपेक्षा रखती है। यह तो मैं मानता हूँ कि अपने आचरण द्वारा अहिंसा को उसके उच्चतम और श्रेष्ठतम रूप में अभिव्यक्ति देना नारी जाति का विशेष कर्त्तव्य है। अहिंसा के क्षेत्र में खोज करने और साहसपूर्ण कदम उठाने की दृष्टि से स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक सक्षम है। कारण जैसा कि मैं मानता हूँ, जिस तरह पशुबल का परिचय देने के लिए अपेक्षित साहस पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक है, उसी तरह आत्मबलिदान देने के लिए जरूरी हिम्मत की दृष्टि से स्त्रियाँ, पुरुषों से कहीं श्रेष्ठ है।

महिलाएँ अपना उद्धार केवल आप ही कर सकती हैं। पुरुष नहीं कर सकते। महिलायें चाहें तो अहिंसा की सिद्धि में सहायक हो सकती हैं। चरखे के द्वारा वे गरीब बहनों की सेवा कर सकती हैं। खद्दर पहनकर वे गरीब घरों की सहायता कर सकती हैं। वे हिन्दू—मुस्लिम एकता स्थापित कर सकती हैं। वे पर्दे को खत्म कर सकती हैं और अस्पृश्यता के भूत को भगा सकती हैं।

कताई को सविनय अवज्ञा की एक अनिवार्य शर्त्त के रूप में मान लिया है, भारत की स्त्रियों को देश—सेवा का दुर्लभ अवसर मिला है। नमक सत्याग्रह के कारण वे हजारों की संख्या में चहारदीवारी से बाहर निकल आई थीं और तभी स्पष्ट हो गया था कि वे भी पुरुषों के बराबर ही देश की सेवा कर सकती हैं। उससे ग्रामीण स्त्रियों को वह गौरव मिला, जो पहले कभी नहीं था।

मुझे यह देखकर खुशी होती है कि मेरी भावी सेना में पुरुषों से स्त्रियाँ कहीं अधिक हैं। उस दशा में अगर लड़ाई हुई तो उसकी ओर अधिक आत्मविश्वास के साथ कदम बढ़ा सकूँगा। पुरुषों की प्रमुखता पर उतने आत्मविश्वास के साथ आगे नहीं बढ़ पाऊँगा। मुझे उनकी हिंसा का डर रहेगा। किन्तु स्त्रियों को मैं हिंसा के विस्फोट के विरूद्ध अपनी गारंटी मानूँगा।

कांग्रेसी अपने घर से स्त्री–जागरण की शुरूआत करें। पत्नी को गुड़िया और विषय–तृप्ति का साधन न मानकर उनके साथ समाज सेवा सन्नद्ध अपनी सहचरी जैसा व्यवहार करना चाहिए। जिन स्त्रियों ने उदार शिक्षा प्राप्त नहीं की है, उनके पतियों को उक्त उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्हें यथासंभव ऐसी शिक्षा देनी चाहिए। यही सुझाव माताओं और बहनों के लिए भी है।

मुझे बताया गया है कि असम में स्त्रियाँ काम करते समय मधुर गीत गाती रहती है–जैसे कि काटते या बुनते समय। मैंने देखा कि आज के भजन में स्त्रियों ने भाग नहीं लिया। हो सकता है, समवेत गायन में उन्हें शर्म महसूस होती हो, लेकिन जब तक स्त्रियाँ शर्माना नहीं छोड़ेंगी, स्वराज्य नहीं मिलने बाला है।

हिन्दू स्त्रियों को ऊँच–नीच और जात–पात का भेद भाव करने की आदत छोड़ देनी चाहिए। उन्हें सभी स्त्रियों के साथ समानता के स्तर पर मिलना–जुलना चाहिए। ग्रामीण स्त्रियाँ अपने अवकाश का समय नष्ट न करें, बल्कि उस समय कताई करें या दूसरा सहायक कार्य करें कि जैसे कि अपने गाँवों को साफ रखना और तालाबों का पानी स्वच्छ रखना।

स्त्रियों को निरक्षरता से जल्द से जल्द मुक्ति दिलानी चाहिए।

अगर बहनें इरादा कर लें, तो ईश्वर की दी हुई अद्‌भुत शक्ति का दर्शन करा सकती हैं। इसके लिए आपको हमेशा प्रार्थना करनी चाहिए। आज तो प्रार्थना मानो बूढ़ी माताओं या निवृत जीवन बिताने वालों के लिए शौक की चीज हो गई है। मेरे पास ऐसे उदाहरण भी

मौजूद है कि कुछ युवक–युवतियों को प्रार्थना या ईश्वर–भजन करना या इसका उपदेश सुनना हास्यास्पद और तुच्छ लगता है। इसलिए आज हमारी यह दुर्दशा हो रही है। परंतु यदि प्रार्थना के रहस्य को समझ सकें, तो इसकी अद्‌भुत शक्ति का पता लग सकता है।

यदि संसार भर की स्त्रियाँ संगठित हो जाए, तो वे ऐसी वीरतापूर्ण अहिंसा का परिचय दे सकती हैं जो अणुबम को गेंद की तरह उछालकर एक ओर फेंक दें। ईश्वर ने उन्हें ऐसा ही वरदान दिया है। स्त्रियों में यह अद्‌भुत शक्ति सुप्तावस्था में पड़ी हुई हैं। एशिया की स्त्रियों में जागृति आ जाए तो मेरा विश्वास है कि संसार आश्चर्य चकित रह जाएगा। मुझे बहनों की मदद मिले तो अहिंसा का मेरा प्रयोग आज सफल हो जाए। 1

बाल-विवाह, विवाह

स्त्री–शिक्षा हम केवल कन्या–शिक्षा से पूरा नहीं कर सकेंगे। सहस्रों लड़कियाँ बारह साल की उम्र में ही बाल–विवाह की बलि चढ़ जाती हैं और हमारी दृष्टि से ओझल हो जाती हैं। वे गृहिणी बन जाती हैं। यह पापपूर्ण प्रथा जब तक हमारे समाज से नहीं मिटेंगी तब तक पुरुषों को स्त्रियों का शिक्षक बनकर उन्हें पढ़ाना पड़ेगा।

जब तक बाल–विवाह का फंदा हमारे गले में पड़ा है, तब तक पुरुषों को अपनी स्त्रियों का शिक्षक बनना पड़ेगा और उनकी यह शिक्षा केवल अक्षर ज्ञान तक ही सीमित नहीं होगी, उन्हें धीरे–धीरे राजनीति और समाज सुधार के विषयों की भी शिक्षा दी जा सकती है। ऐसा करने में पहले अक्षर–ज्ञान की जरूरत नहीं पड़ती। पुरुषों को अपनी पत्नियों के बारे में अपना रवैया बदलना पड़ेगा। पत्नी जब तक वयस्क न हो जाए, तब तक विद्योपार्जन करे और पति उसके साथ ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे। यदि हम एकदम ही जड़ नहीं हो गए हैं तो

पन्द्रह साल की लड़की पर प्रसव महावेदना का बोझ हर्गिज नहीं डालेंगे। हमारा हृदय ऐसे विचार मात्र से काँप जाना चाहिए।

विवाह का यदि कोई अर्थ है तो यही है कि वह अधिक समर्पण की दिशा में है। दो असमान व्यक्तियों के परस्पर आत्मसमर्पण का अर्थ अधिक स्वतंत्रता है। क्योंकि यह किसी महत्तर उत्तरदाायित्व की प्रतीति है। महत्तम उत्तरदायित्व का पालन ही अधिकतम स्वतंत्रता है। यह ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण से ही प्राप्त होती है।

विवाह दो शरीरों का नहीं होता। दो आत्मायें शारीरिक भोग–विलास के लिए नहीं बल्कि अपने भव्य विकास के लिए एकत्र हुए हैं। इनमें से एक का शरीर छूटने पर उनका वह संबंध उल्टा अधिक दृढ़ हो जाता है।

कुछ लड़कियों के माता–पिता को मैंने इस बात पर राजी कर लिया है कि वे कम उम्र में अपनी लड़कियों के विवाह के किसी प्रस्ताव पर विचार नहीं करेंगे बल्कि उसकी कोई चर्चा भी नहीं करेंगे। यह तो हमारा कर्त्तव्य है कि हम उन्हें अपने विचार पवित्र रखने की शिक्षा दें और विवाह आदि की चर्चा करके उनके मन में विकार न उत्पन्न करें।

पहली पत्नी की अनुमति हो अथवा न हो परंतु दूसरी पत्नी करना मुझे अनुचित लगता है। मेरी दृष्टि से यदि पहली पत्नी से संतान न हो तो भी पुरुष को दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए।

विवाह को यदि सचमुच ही धार्मिक संस्कार बनाना है, इसके लिए व्यक्ति को एक नए जीवन में प्रवेश कराना है तो जिनका विवाह होता है उन लड़कियों को पूर्ण विकसित, परिपक्व होना चाहिए। जीवन भर का साथी चुनने में उनका भी कुछ हाथ होना चाहिए और वे जो काम करने जा रही हैं उसका फलाफल भी उन्हें समझना चाहिए। हम बच्चों के ऐसे संयोग को विवाह का नाम देकर उस तथाकथित पति के मर जाने पर उस बालिका को आजीवन वैधव्य में बँधने पर मजबूर करके ईश्वर और मनुष्य के प्रति पाप करते हैं।

जिसे आत्म–संयम से कुछ भी सरोकार न हो और जो पाप में डूबा हो, वही यह कह सकता है कि रजस्वला होने के पूर्व ही उसका

विवाह कर देना चाहिए और ऐसा न करना पाप है। मानना तो यह चाहिए कि राजस्वला होने के बाद भी कई बरसों तक लड़की का विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाह का ख्याल भी नहीं किया जा सकता। लड़की रजस्वला होते ही संतान उत्पन्न करने के योग्य नहीं हो जाती।

यदि लड़कियों के बाल–विवाह की, कम उम्र से विवाह की नहीं, बल्कि पचीस वर्ष के पूर्व किया गया हर विवाह–आज्ञा देने वाले ग्रंथ प्रमाणिक भी पाए जायें तो हमें चाहिए कि हम प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान को दृष्टि में रखकर उनका त्याग कर दें।

जो माता–पिता अपनी लड़कियों का विवाह कच्ची उम्र में कर देने का पाप करते हैं, अगर उनकी लड़कियाँ बालपन में ही विधवा हो जाए तो उन्हें उनका विवाह करके अपने पाप का प्रायश्चित कर लेना चाहिए। अगर वे परिपक्व उम्र की विधवा हो तो पुनर्विवाह करने या विधवा रहने का निश्चय उन्हें स्वयं ही करना चाहिए। अगर मुझसे पूछा जाए कि इस संबंध में नियम क्या होना चाहिए तो मैं कहूँगा कि जो नियम स्त्रियों के लिए है वे पुरुषों के लिए भी हों। अगर (भोग) पचास वर्ष का विधुर धृष्टता पूर्वक पुनर्विवाह कर सकता है तो उसी उम्र की विधवा को भी यह अधिकार होना चाहिए। यह दूसरी बात है कि मेरी समझ में स्त्री और पुरुष दोनों ही इस अवस्था में पुनर्विवाह करने से पाप के भागी बनेंगे।

शिव पार्वती का विवाह आदर्श विवाह है। पार्वती के जैसा सच्चा विवाह करना हो, उसे तो शिवजी जैसे निर्विकारी वर का ही चिन्तन करना चाहिए। ऐसी रेखा केवल पार्वती के हाथ में थी सो नहीं। प्रत्येक स्त्री के हाथ में यह रेखा होती है।

पति के चुनाव में उसने कैसे कपड़े पहने हैं, कैसी पगड़ी बाँधी है उसका विचार नहीं करना है, अपितु यह देखना है कि उसके गुण कैसे हैं, उसके पास विद्या कितनी है? एक बार विवाह करने का विचार किया तो अच्छे चरित्रवाले के साथ। जिससे मन का मेल हो

सकता हो उसके साथ विवाह करना चाहिए। ऐसा चरित्रवान युवक मिले तो ठीक नहीं तो कुआँरी रहने का संकल्प करना चाहिए। जो भी मिल जाए उसी के साथ विवाह करने का विचार नहीं करना चाहिए।

यदि मेरा बस चले तो मैं लड़कियों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु बीस वर्ष निश्चित कर दूँ।

बेटी–बेटे के विवाह के अवसर वर वर–वधू के साथ दोनों के माता–पिता को भी उपवास रखना होगा। विवाह भोग के लिए नहीं संयम के लिए है। इस बात को आजकल तो लोग बिल्कुल ही भूल गए हैं। आदमी–स्त्री पुरुष–जब विकारवश होते हैं तब उस विकार को नियमित रखने, उसे मर्यादा में बाँधने के लिए विवाह संबंध करते हैं। हममें और पशुओं में यही भेद है। इस तरह यद्यपि विवाह विषय भोग का अवसर देता है तथापि शास्त्र में कहा गया है कि दंपत्ति का धर्म है कि वे विषय–भोग को उत्तरोत्तर कम करते जाएँ। भोगार्थ रचे गए दाम्पत्य संबंध को भी शास्त्र मोक्षार्थ उपयोग करने का प्रयत्न है और उनका यही आदेश है और वह भी इस हदतक कि मुमुक्षओं ने आत्मा और परमात्मा के संबंध को भी विवाह रूप में वर्णित किया है। दाम्पत्य प्रेम के विषय में जिस शुद्ध अद्वैत की कल्पना की गई है वही कल्पना आत्मा और परमात्मा के अद्वैत संबंध में भी की गई है।

हमने अपनी बेटियों, बहनों और पत्नियों को घोर अंधकार में रखने का षड्यंत्र किया और जिस शिक्षा की वे अधिकारिणी थी उससे उन्हें वंचित किया। अज्ञानता के वश होकर हमने अपनी बेटियों को उस अवस्था में ही ब्याह दिया जब उनकी उम्र अभी हमारे साथ बहन और भाई की तरह खेलने की थी। यह प्रथा बहुत दिनों से लगातार चलती आई है, इसलिए आप स्वयं ऐसा मानने लगी कि तथाकथित ब्याह करके अपनी छोटी बेटियों को छोटी उम्र में दूसरे के हवाले कर देना और उन्हें घोर अज्ञान में रखना स्वाभाविक चीज है।

बेटियों को विवाह के आड़ में बेचना गलत है। किसी घर में बाल–विधवा होना एक पाप है। बालविवाह कोई विवाह नहीं होता

और यदि आप यह बात मानने के लिए तैयार नहीं है तो किसी बालिका का विवाह करना भी उतना ही बड़ा पाप है।

जब तक लड़की वयस्क नहीं हो जाए तब तक उसका विवाह नहीं किया जाना चाहिए और न उसके सामने ऐसी परिस्थितियाँ आने देनी चाहिए जिससे उसके मन में विवाह का ख्याल भी उठे। अगर हिन्दू शास्त्र कहते हैं लड़कियों को वयस्क होने से पहले व्याह देना चाहिए तो मैं आपसे कहूँगा कि आप शास्त्रों की बात पर ध्यान न दें।

विवाह में ऐसी क्या खास बात है कि माता–पिता और बच्चे फूले न समाए और खुशी से लगभग पागल हो उठे। क्या यह जन्म, जरा और मृत्यु की तरह प्रतिदिन होने वाली एक सामान्य घटना नहीं है।

अगर कोई निर्दय माता–पिता किसी नन्हीं सी बालिका को स्वार्थ या अज्ञान के कारण उसके हिताहित का विचार न करके उसकी इच्छा और सम्मति के बिना किसी को सौंप दे तो इस तरह का संबंध विवाह संबंध हो ही नहीं सकता। ऐसा संबंध किसी हालत में धार्मिक तो नहीं कहा जा सकता। अतएव ऐसी बालिका का पुनर्विवाह कर्त्तव्य बन जाता है।

मेरे विचार से ऐसे भयंकर ब्याह, ब्याह नहीं एक प्रकार का बलात्कार है। अगर इस तरह की बिकी हुई बालिका छुड़ाई जा सके तो मैं जरूर छुड़ाऊँ और किसी योग्य वर के साथ उसका ब्याह कर दूँ। जहाँ–जहाँ ऐसे विवाह हों, नवयुवक उन्हें जनता के सामने रखें। कन्या के माता–पिता का पता लगाकर उनके पास जाएँ और जिस बूढ़े पुरुष ने विवाह किया हो उसे समझाये कि वह उस कन्या को मुक्त कर दें।

भारत वर्ष में बहुत सी कन्याओं के साथ यही हाल होता है कि बेचारी कन्या कुछ–कुछ जानने लगती है और खेलने तथा पठन–पाठन के योग्य होती ही है कि स्वार्थी और धर्मांध माता–पिता उसे संसार सागर में ढकेल देते हैं। विवाह के पहले यथासंभव कन्या को जिस नवयुवक के साथ संबंध होने वाला है उसे देखने का मौका मिलना चाहिए।

कामी पुरुषों के काम की तृप्ति का प्रश्न विकट है। कामी का न ज्ञान बचता है न विवेक। कामी पुरुष किसी न किसी तरह अपने काम की तृप्ति कर लेता है। समाज ऐसे व्यक्ति से कैसे निपटे? कन्या की शादी बीस वर्ष की आयु के पहले बिना उसकी सम्मति से नहीं की जाए तो कोई कन्या वृद्ध से शादी नहीं करेगी तो तब वह वृद्ध कामी क्या करे ?

लड़कियों की छोटी उम्र में शादी न करें और उनके सामने शादी की चर्चा न करें कि तुम्हारी शादी कर देंगे। बल्कि गार्गी–मैत्रयी की चर्चा करें।

विवाह शरीर द्वारा आत्मा का होता है और एक आत्मा की भक्ति से अनेक आत्मा अर्थात् परमेश्वर की भक्ति सिद्ध करने की कला सीखने का भेद विवाह में छिपा हुआ है। इसी कारण मीरा ने गाया है–मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।

विवाह का उद्देश्य वासना की तृप्ति करना नहीं बल्कि उनके ऊपर नियंत्रण लगाना है।

अपने बच्चे पालने के लिए अथवा भोजन बनवाने के लिए नई शादी करने जैसा ढोंग शायद ही दूसरा कोई हो। मैं समझता हूँ इससे अच्छा होगा कि नम्रतापूर्वक यह स्वीकार कर लें कि मुझे अपनी विषय–वासना तृप्त करने के लिए शादी करनी हागी। दूसरी शादी करने वाले को मृत पत्नी के प्रेम का ढोंग छोड़ देना चाहिए अथवा यह कहना चाहिए कि वह प्रेम विषय–वासना तो तृप्त नहीं करता।

आज हमारे समाज की ऐसी दशा है कि आत्मसंयम की कोई प्रेरणा ही उससे नहीं मिलती। हमारा पालन–पोषण शुरू से ही उससे विपरीत दिशा में होता है। माता–पिता की मुख्य चिंता तो यही होती है जैसे भी हो अपनी संतान का ब्याह कर दें। जिससे वे चूहे की तरह बच्चे जनते रहें और अगर कहीं लड़की पैदा हो जाए तो जितनी कम उम्र में हो सके बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उसका ब्याह कर दिया जाता है। विवाह की रस्म भी क्या है मानों, दावतों और बेमतलब तमाशा की एक लंबी दुख–कथा है।

अगर संतान चाहिए तो विवाह शुद्ध धार्मिक भावना से होना जरूरी है। जिसे संतान की जरूरत न हो उसे विवाह करने की कतई जरूरत नहीं। काम वासना की पूर्ति के लिए किया गया विवाह विवाह नहीं व्यभिचार है। इसलिए विवाह के संस्कार का अर्थ यह है कि संभोग की इजाजत इसी सूरत में है जबकि दोनों तरफ संतान की स्पष्ट इच्छा हो। यह सारी कल्पना ही पवित्र है। विवाह से पहले ऐसा प्रणय नहीं होता जिसका उद्देश्य कामोत्तेजना और इन्द्रिय सुख देना होता है। अगर एक से ज्यादा संतान नहीं चाहिए तो संभोग जीवन में एक बार ही हो सकता है। जो सदाचारी और शरीर से स्वस्थ नहीं, संभोग करना उनका काम नहीं है और यदि वे करते हैं तो वह व्यभिचार है। अगर तुमने पहले से यह समझ रखा हो कि विवाह पाशविक भूख मिटाने के लिए है, तो तुम्हें उस विचार को भूल जाना चाहिए। यह अंधविश्वास है।

विवाह के संबंध में मैं जिसे धर्म मानता हूँ वह यह है–माता–पिता; विवाह अथवा अपने ही मन के किसी व्यक्ति से विवाह करने को बाध्य नहीं कर सकते। अपने साथी का चुनाव करने में पुत्र अथवा पुत्री अपने माता–पिता की बात अत्यन्त आदर पूर्वक सुनें, किन्तु जहाँ उनका मन न माने वहाँ वे विवाह न करें। इसी प्रकार जिस संबंध से माता–पिता प्रसन्न न हो वह संबंध भी न करें।

लड़कियों को शादी करने के लिए मजबूर करके माँ–बाप बहुत गलती करते हैं। अगर वे अपनी लड़कियों को इस लायक नहीं बनाते कि वे अपनी जीविका खुद कमा सकें, तो यह भी उसकी गलती है। माँ–बाप को कोई हक नहीं है कि वे शादी से इंकार करने पर अपनी लड़की को घर से निकाल दें। आशा करनी चाहिए कि ऐसे निर्दयी माँ–बाप कम ही होंगे। उस लड़की को मैं यही सलाह दूँगा कि वह अपने हाथ की मेहनत मजदूरी के किसी भी काम को, फिर वह भंगी का काम ही क्यों न हो, अपनी शान के खिलाफ न समझें। स्त्रियों को पुरुषों से आसरे की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। इन्हें तो पुरातन

काल की द्रौपदी की तरह अपनी शक्ति अपने चरित्र की शुचिता तथा भगवान पर भरोसा रखना चाहिए।

बाल–विवाह होने की संभावना ही नहीं होनी चाहिए। मैं बाल–विवाह के विरूद्ध हूँ। यह एक कुप्रथा है। 1

दाम्पत्य जीवन

मैं सभी बालिका वधू के पति को कहता हूँ कि उन्होंने अज्ञानता वश पाप किया है।

पति–पत्नी का प्रेम स्थूल वस्तु नहीं है। उसके द्वारा आत्मा–परमात्मा के प्रेम की झाँकी दिखाई दे सकती है। यह प्रेम वैषयिक प्रेम कभी नहीं हो सकता। विषय सेवन तो पशु भी करता है, उसे हम पशुचर्या के नाम से जानते हैं। जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ बल प्रयोग के लिए गुंजाइश ही नहीं है। जहाँ शुद्ध प्रेम है वहाँ दोनों एक दूसरे का मन रखकर चलते हैं और दोनों धर्म मार्ग में आगे बढ़ते हैं।

दाम्पत्य प्रेम बिल्कुल निर्मल हो जाने पर ही परकाष्ठा को पहुँचता है। तब उसमें विषय वासना की गुंजाइश नहीं रहती और स्वार्थ की गंध तक नहीं हो सकती। इसी से कवियों ने दाम्पत्य प्रेम का वर्णन करके आत्मा की परमात्मा के प्रति लगन को स्वयं पहचाना है और दूसरों को भी उसका परिचय कराया है। ऐसा प्रेम कदाचित ही मिल पाता है। विवाह का बीज आसक्ति में होता है। उसकी उत्पत्ति तीव्र आसक्ति से हुई है। तीव्र आसक्ति जब अनासक्ति के रूप में परिणत हो जाए और जब एक आत्मा शरीर स्पर्श की आकांक्षा त्यागकर और उसका ख्याल तक न रखकर दूसरी आत्मा में तल्लीन हो जाए तब उस प्रेम में परमात्मा के प्रेम की कुछ झलक मिल सकती है। यह वर्णन भी बहुत स्थूल है, मैं जिस प्रेम का दर्शन करना चाहता हूँ वह निर्विकार प्रेम है। मैं खुद अभी इतना विकार शून्य नहीं हुआ हूँ कि उसका यथार्थ वर्णन कर सकूँ।

यदि कोई पत्नी अपने पति के विचारों से सहमत न होते हुए भी अपनी दृष्टि से सर्वथा निर्दोष हो तो पाशविक वासना–रहित स्नेह के द्वारा उसके मन को जीता जा सकता है। इस प्रक्रिया के दौरान पति को चाहिए कि पत्नी को अपने मन से चलते रहने दे और स्वयं वही करता रहे जिसे वह सर्वोत्तम समझता है।

मैं पति–पत्नी का धर्म यह नहीं मानता कि यदि उनमें से एक विकारवश हो तो दूसरा उसकी वासना को तृप्त करने के लिए बाध्य है। एक के विकारवश होने पर दूसरे को भी उस विकार में सम्मिलित करे तो यह बलात्कार है। पति या पत्नी को बलात्कार का अधिकार नहीं है, विकार आग की तरह है। वह मनुष्य को सूखी घास की तरह जलाता है। एक के मन में विकार उत्पन्न होता है तो उसका प्रभाव दूसरे पर होता है। दंपत्ति में से एक के मन में विकार उत्पन्न होने पर दूसरा निर्विकार रह सके तो मैं उसकी हजार बार वंदना करता हूँ।

पति–पत्नी का धर्म विकट है। हिन्दू पति यही समझते हुए दिखाई देते हैं कि पत्नी एक सौदे की चीज है। मैंने ऐसे राक्षस रूप पतियों के बारे में भी सुना है जो अर्धांगिनी के सम्बन्ध में कहते हैं यह मेरा माल है। जो यह कहते हों कि पति जो अपने जीवन में करे उनको पत्नी तुरंत समझ ले और वह भी उन पर अमल करने लगे, उन्हें क्या कहें ?

मैं तो अपने अनुभव और अपने साथियों के अनुभव के आधार पर यहाँ तक कहना चाहता हूँ कि पति–पत्नी के बीच व्यभिचार पूर्ण आर्कषण स्वाभाविक नहीं है। विवाह का अर्थ यह है कि पति–पत्नी अपने प्रेम को निर्मल और शुद्ध बनाएँ और ईश्वर प्रेम का अनुभव करें। पति–पत्नी के बीच निर्विकार प्रेम होना असंभव नहीं है। मनुष्य पशु नहीं है। वह अनेक पशु जन्मों के बाद मनुष्य बना है। केवल वही सीधा खड़ा रहने के लिए पैदा हुआ है। पशुता और पुरूषार्थ के बीच उतना ही भेद है जितना जड़ और चेतन के बीच।

मैं यह नहीं मानता कि धर्म ऐसा कहता है कि जो पति करे वैसा ही पत्नी को भी करनी चाहिए।

यदि मांसाहारी कुटुम्ब में पुरुष निरामिषाहार को धर्म समझकर निरामिषाहारी हो जाए तो क्या किया जाए ? क्या स्त्री से भी जबर्दस्ती पुरुष का धर्म स्वीकार कराया जाए। मुझे लगता है कि यदि पुरुष ने भोगेच्छा का त्याग कर दिया हो और पत्नी अपने लिए मांस नहीं ला पाती हो तो पति को चाहिए कि तटस्थ भाव से उसके मांसाहार में मदद दे। यदि पुरुष विषयासक्त रहते हुए भी धर्म की दृष्टि से मांसाहार तो छोड़ दे परन्तु अन्य विषयों में असंयत बना रहे तो उसे अपनी पत्नी से अलग रहने लगना चाहिए और उसे भरण–पोषण लायक धन देना चाहिए। यदि स्त्री स्वधर्मावलंबी किसी अन्य पुरुष से फिर विवाह करना चाहे तो उसे विरोध नहीं करना चाहिए, इतना ही नहीं वरन उसकी सहायता करनी चाहिए।

सीता को मैं आदर्श पत्नी और राम को आदर्श पति मानता हूँ। लेकिन सीता–राम की दासी नहीं थीं या यह कहना चाहिए कि यदि सीता राम की दासी थीं तो राम भी उनके दास थे। राम सीता का बहुत ज्यादा ख्याल रखते थे। जहाँ, सच्चे प्रेम का अभाव होता है, वहाँ प्रेम बंधन कभी नहीं होता। आजकल की हिन्दू गृहस्थी एक अनूठी पहेली है। पति और पत्नी विवाहित होते समय एक दूसरे के बारे में बिल्कुल नहीं जानते। शास्त्रज्ञा, रिवाज तथा विवाहित दम्पतियों का निष्कंटक जीवन ये चीजें अधिकांश हिन्दू घरों में शांति बनाए रखती है। लेकिन जब पत्नी या पति के विचार साधारणतः प्रचलित विचारों से भिन्न होते हैं तब उनमें कलह होने का भय उत्पन्न हो जाता है। पति तो अपने को निरंकुश समझता है। वह अपने को अपने जीवन सहचरी से सलाह लेने के लिए बँधा नहीं मानता। वह उसे अपनी मिल्कियत मानता है और वह बेचारी जो उसकी इस मान्यता में विश्वास करती है प्रायः अपनी आत्मा को दबाकर रहती है। मैं समझता हूँ कि इस स्थिति से उबरने का रास्ता है। मीरा बाई ने मार्ग दिखा दिया है। जब पत्नी अपने को गलती पर न समझे और जब उसका उद्देश्य अधिक ऊँचा हो, तब उसे पूरा अधिकार है

कि वह अपने मन का रास्ता अख्तियार कर ले और नम्रता से परिणाम का सामना करें।

पति मांसाहारी बन जाए और अपनी पत्नी को मांस पकाने के लिए मजबूर करे तो पत्नी अपने कर्त्तव्य भाव के प्रतिकूल इसके लिए बाध्य नहीं है। घर में शांति अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है। लेकिन इसे अपने आप में एक ध्येय नहीं माना जा सकता। मेरे लिए तो विवाहित अवस्था भी अनुशासन की वैसी ही एक अवस्था है, जैसी कोई अन्य हो सकती है। जब एक पक्ष अनुशासन के नियमों का उल्लंघन करता है तब दूसरे को हक हो जाता है कि वह बंधन को तोड़ दे। हिन्दू धर्म पति–पत्नी में से प्रत्येक को एक दूसरे के लिए बिल्कुल समान मानता है, इसमें शक नहीं कि रिवाज कुछ और पड़ गया है।

हर एक पति अपनी पत्नी को भोग–विलास की सामग्री समझना छोड़ दे और राष्ट्र–निर्माण में उनको साझीदार बनाए।

पति द्वारा पत्नी के चारित्रिक दोष लगाने पर—

धर्मपत्नी यदि अपवित्र हो गई है तो मैं इसके लिए आपको ही दोषी समझता हूँ। आप उनसे दूर चले गए थे। उस बाला का संभवतः न तो आपके साथ विवाह करने में कोई हाथ था और न आपसे बिछड़ने में उसकी सहमति थी। यदि वह विषय–भोग के बिना न रह सके और पतित हो जाए तो उसमें उसका क्या दोष निकालना? जब पुरुष गिरता है तब स्त्री जी मसोसकर रह जाती है। आपकी पत्नी ने जिस पुत्र को जन्म दिया है, यदि वह आपका नहीं है तो आप उससे संबंध तोड़ सकते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि उस बाला का भरण–पोषण तो आपको ही करना चाहिए। अगर वह आपको छोड़ दें अथवा जिसके साथ उसने विषय–भोग किया है उसके साथ रहने लगे तो इसे आपको सहन करना होगा। केवल लज्जावश आप अपनी पत्नी के साथ रहने के लिए बँधे हुए नहीं है। आप उससे दूर गए इसी से वह पथभ्रष्ट हुई ऐसा समझकर और उस पर तरस खाकर यदि आप अब उसके साथ रहने की बात सोचें तो इसमें कोई अनीति

नहीं? लेकिन यह कदम तो आप तभी उठा सकते हैं, जब उस स्त्री को अपने किए पर पश्चाताप हो और आपके साथ रहने में उसे संतोष हो। यदि उसका मन सर्वथा व्यभिचारी हो गया हो तो उसका त्याग करना ही कर्त्तव्य है।

नई शादी के बाद पति–पत्नी (बहू–बेटे) को–घरेलू काम–काज का झंझट बहुत अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए। इसके लिए पहले जिस प्रकार खाने में सादगी बरतते थे यदि वैसे ही बरतते रहे तो काफी समय बच जाएगा। खाना एक ही समय बने और सो भी इतना सादा कि उसमें जुटे न रहना पड़े। मणिलाल यह संपूर्ण कला जानता है। स्त्रियों को सिर्फ रसोई बनाने के लिए नहीं सिरजा गया है और जिस हदतक रसोई बनाना आवश्यक है इस हदतक उसमें पति–पत्नी दोनों को हाथ बँटाना चाहिए। और यदि दोनों सेवावृति से हाथ बटाएँ तो आसानी से समय बचत करने वाले अनेक नुस्खे खोज सकते हैं।

पुरुषों को जीवन शुद्ध बनाना चाहिए। पुरुष का अपनी पत्नी के प्रति निष्ठावान होना उतना ही पवित्र कर्त्तव्य है, जितना कि पत्नी की पति के प्रति निष्ठावान होना। तथाकथित शास्त्र में भले ही कुछ प्रमाण दिए जाएँ, लेकिन किसी पुरुष का एक से अधिक पत्नी रखना गलत है।

पति के विदेश चले जाने पर पत्नी का उसके मित्र से शारीरिक संबंध एवं गर्भ ठहरने पर गर्भपात नहीं कराना चाहिए, यह तो सूर्यप्रकाश की तरह स्पष्ट है। जैसा दोष इस बेचारी पत्नी ने किया है, वैसा दोष हजारों पति करते हैं, पर उनको कोई कुछ नहीं कहता। समाज इसे बर्दास्त तो कर ही लेता है। इसकी निन्दा भी नहीं करता। पुरुष जिस विकार के वश में है, उसी के वश में स्त्री भी है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि पुरुष का दोष प्रकट नहीं होता और स्त्री का सहज प्रकट हो जाता है। वह स्त्री दया की पात्र है। उसके बालक का प्रेम के साथ पालन करना पति का धर्म है। पिता की इच्छा के अधीन होकर पत्नी का त्याग करना अधर्म है। अब पति अपनी पत्नी के

साथ संभोग करे या न करे, यह एक जटिल प्रश्न है। यदि पति–पत्नी, परायण हो, उसने स्वयं कभी दोष न किया हो तो पत्नी संग का त्याग करना उसके लिए उचित है। वह पत्नी का पालन–पोषण कर उसके लिए ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था करे और पत्नी को शुद्ध रहने में सहायता करे। यदि पत्नी को सच्चा पश्चाताप हुआ हो और पति उसे ग्रहण करे तो यह दोष नहीं धर्म है।

पति वर्ग पत्नी धर्म का उपदेश देने के लिए सदा उत्सुक रहता है और पत्नियों से यहाँ तक कहा जाता है कि वे अपने को पति की मिल्कियत समझें। पति तो मानता ही है कि उसे पुरुष के नाते जो अधिकार घर–बार, जमीन–जायदाद और पशु इत्यादि पर प्राप्त है, ठीक यही अधिकार उसे पत्नी पर भी प्राप्त है। इस बात के समर्थन में रामचरितमानस जैसे ग्रंथ का भी अवलंबन किया जाता है।

पति का धर्म है कि पत्नी को अपनी सच्ची सहधर्मिणी, सहचारिणी और अर्द्धांगिनी माने, उसके दुख से दुखी हो और सुख से सुखी। पत्नी, पति की दासी कदापि नहीं है, न वह कभी पति के भोग का भाजन ही हैं। जो स्वतंत्रता पति अपने लिए चाहता है, ठीक वहीं स्वतंत्रता पत्नी को भी होनी चाहिए।

हिन्दू संस्कृति ने स्त्री को पति का अत्यधिक गुलाम बनाकर और उसे पति के सर्वथा अधीन रखकर बड़ी भारी भूल की है। इसके कारण पति कभी–कभी अपने अधिकार का दुरूपयोग करते हैं और पशुवत व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह के अत्याचार का उपाय सिर्फ कानून का आश्रय लेने में नहीं बल्कि विवाहित स्त्रियों को सच्चे अर्थ में सुशिक्षित बनाने और पतियों के अमानुषी अत्याचार के विरूद्ध लोकमत जागृत करने में है। हम स्त्रियों को यह समझायें, सिखायें और विश्वास दिलायें कि एक पापी, दुराचारी पति की खुशामद करना या उसकी संगति की आशा रखना उसका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि वैसा पति उसकी जरा भी चिन्ता नहीं रखता तनिक भी परवाह नहीं करता। अतएव कानूनी बंधन तोड़े बिना ही

वह अपने पति से अलग रह सकती है। अपने में यह अनुभव कर सकती है कि उसका ब्याह कभी हुआ ही नहीं। अवश्य ही एक हिन्दू पत्नी के लिए, जो तलाक नहीं दे सकती, इस संबंध में कानून की ओर से भी दो मार्ग खुले हैं—एक तो मारपीट करने के कारण पति को सजा दिलाने का, और दूसरा उससे जीविका के लिए आजीवन सहायता पाने का। लेकिन अनुभव से मुझे पता चला है कि अगर सर्वदा नहीं तो बहुधा, यह उपाय निरर्थक से भी बुरा सिद्ध हुआ। इसके कारण किसी भी स्त्री को कभी सुख नहीं मिला। उलटे पति का सुधार असंभव नहीं तो कष्ट—साध्य जरूर बन गया है। उन्हें स्वतंत्र रूप से अपना आश्रय बनाना चाहिए। ऐसी स्त्री सार्वजनिक रूप से सेवा के योग्य बनने का प्रयत्न करें।

मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि पति के कमाए हुए धन पर पत्नी का पूरा अधिकार है और पत्नी—पति की मिल्कियत की अविभाज्य भागीदार है।

मेरा विचार तो यह है कि प्रत्येक पत्नी—परायण पति को जैसे ही मौका मिले, अपनी पत्नी को स्वावलंबी बनने का ढंग सिखा देना चाहिए। पत्नी के लिए पैसा छोड़ जाने को तो मैं गौण कर्त्तव्य मानता हूँ। अपनी पत्नी को अपने पर निर्भर रखने वाले व्यक्ति के लिए एकमात्र उपाय यही है कि वह अपनी पत्नी के लिए पैसा छोड़ जाए। किन्तु सच बात तो यह है कि जैसे कोई पत्नी अपने पति के लिए पैसा नहीं छोड़ जाती और यदि वह छोड़ जाती है तो पति शरमाता है। ठीक यही बात पत्नी पर भी लागू होनी चाहिए।

पत्नी से निराश पति की शिकायत पर—मालूम होता है कि पति के मन में स्वामित्व की सत्ता आजमाने की इच्छा काम कर रही है। अगर यह बात न होती और पति, पत्नी को मित्रवत मानते होते, तो निराशा का कोई कारण ही न रह जाता। मित्र को हम धैर्य पूर्वक समझाते हैं और उसके न मानने पर निराश नहीं होते, जर्बदस्ती नहीं करतें। अगर पति को पत्नी से कुछ आशा रखने का अधिकार है, तो

पत्नी को भी कुछ होगा न? देवदर्शन की इच्छुक अनेक पत्नियों को सुधारक पतियों की धुन जब पसंद न आती होगी तो वे बेचारी क्या करती होंगी? उन्हें तो पति को समझाने की हिम्मत तक न होती होगी। इसलिए इन पति को और उनके समान दूसरों को भी मैं पहली सलाह तो यह देता हूँ कि वे जानबूझ कर अपना स्वामित्व का अधिकार छोड़ दें। पत्नी की सेवा करते समय और शिक्षा के लिए शिक्षा देते समय वे अपने विकारों को भी वश में रखें और फिर धैर्य के साथ समझायें कि अंधविश्वास, मंदिर के पुजारियों पर आस्था रखना, तथाकथित प्रसिद्ध मंदिरों में भटकना वैगरह फिजूल है। और ऐसा करना हानिकारक भी हो सकता है। इसबारे में मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि अगर पति का प्रेम शुद्ध होगा तो पत्नी जरूर समझ जाएगी। जल्दी में आम नहीं पकते। जब आम जैसे वृक्ष के लिए वर्षों की सार सँभाल जरूरी है तो जिस स्त्री रूपी वृक्ष को ज्ञान—हीन रखा गया है उसकी परवरिश में कितनी और कैसी कोमलतापूर्ण सार—सँभाव की आवश्यकता होगी? मेरा अपना अनुभव तो यह है कि इस तरह रोज—रोज सींचने से ही संतोष और सफलता मिल सकती है। इस तरह का संबंध करके माता—पिता ने जो भूल की है उसे ऊपर बताए अनुसार सुधार लेने में ही पुरुषार्थ है। पत्नी को धोखा देकर त्याग देना और उसी में सुख मानना तो आसान है, लेकिन न यह सच्चा सुख है और न पुरुषार्थ और इसी कारण यह धर्म भी नहीं है। अगर सभी पति अपनी पत्नियों को छोड़ दें, तो देश की इन सभी स्त्रियों की क्या स्थिति होगी? पति अगर नहीं सँभालेगा तो कौन सँभालेगा? आज पति और पत्नी में जो असंगति दिखाई पड़ती है वह भी देश की मौजूदा हालत की निशानी है।

जब लोग विषय—भोग की बात सोचते हैं तभी राग—द्वेष उत्पन्न होते हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि पति—पत्नी के बीच विषय—भोग का संबंध न होकर सच्ची मित्रता का संबंध रहे। मैं जानता हूँ कि इसका पालन करना कठिन है। परन्तु प्रयत्न करने वाले के लिए

तनिक भी कठिन नहीं है। शादी के समय प्रतिज्ञा लेते वक्त वधू कहती है तुम मेरे मित्र हो, गुरू हो। देवता हो', भविष्य में मैं, गुरू और देवता शब्द को हटा देना चाहता हूँ। इसका कारण यह है कि पति स्वयं को देवता और गुरु माने यह ठीक नहीं है। दूसरों की सेवा करने वाला तो सहज ही उसके लिए देवता और गुरु बन जाता है।

तमाम पत्नियाँ मानवीयता से भरपूर हैं, जो अपने पशुतुल्य पतियों के अत्याचार सहकर उन्हें क्षमा कर देती हैं। अच्छा तो यह हो कि वे क्षमा कर दें, किन्तु खुश करने का प्रयत्न न करें, बल्कि उन्हीं के हित के विचार से असहयोग ठान लें।

पति–पत्नी के बारे में मेरा यही दृढ़ मत है कि साथ रहने के विषय में दोनों की सहमति की जरूरत है। अलग रहने के लिए नहीं। ऐसा न हो तो सामान्य तौर पर दोनों ही गिरे रहें। दोनों एक साथ जागृत हों और जागृत बने रहें, ऐसा तो कम ही होता है।

पति अगर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर है तो पत्नी भी वही है। पत्नी दासी नहीं समानाधिकार वाली मित्र है, सहचारिणी है। दोनों परस्पर एक दूसरे के गुरु हैं।

पति–पत्नी में जो कोई भी धन कमाता है, उस धन के दोनो समान रूप से अधिकारी हैं। पति, पत्नी की मदद से ही कमाता है, फिर भले पत्नी केवल रसोई सँभालती हो। वह दासी नहीं, हकदार है।

जिस पत्नी के प्रति पति अन्यायपूर्ण आचरण करता हो, उसे अपने पति से मुक्त होने का अधिकार है।

बच्चों पर दोनों का समान अधिकार है। बड़े होने पर किसी का भी नहीं। पत्नी नालायक हो तो उसका अधिकार खत्म हो जाता है। यही बात पति के संबंध में भी है।

पति का पत्नी के चरित्र पर संदेह करने पर–

तुम्हारी पत्नी जो कहती हैं, उस पर मुझे विश्वास है। उसके मन में शरीर भोग की इच्छा नहीं है। उसके मन में किसी पुरुष के प्रति विषयासक्ति नहीं उत्पन्न होती। अतः उसपर संदेह करने का

कोई कारण नहीं है। लेकिन मान लें कि वह झूठ बोलती है तो भी उसपर संदेह करने का हेतु क्या है? पति विषय भोग का आनन्द लेता है तो पत्नी उसे सहन करती है, फिर पुरुष पत्नी पर क्यों नजर रखे और क्रोध करे? स्त्री जैसा चाहे वैसा करे। यदि स्त्री साध्वी नहीं रहना चाहती तो पति उसे बलपूर्वक साध्वी बनाकर नहीं रख सकता। जो शुद्ध रहना चाहते हैं, वे ही शुद्ध रह सकते हैं। इसलिए यह उचित लगता है कि तुम पत्नी का दोष निकालने का विचार अपने मन से निकाल बाहर करो। एक दूसरे का दोष ढूँढ़ने से तुम दोनों का ही अहित होता है। इसके अलावा किसी व्यक्ति पर संदेह वश दोषारोपण करना पापपूर्ण और अनुचित भी है। यह तो सर्वथा दुर्बलता का लक्षण है।

पति को पत्नी का विकास अवरूद्ध करने का कोई अधिकार नहीं है।

जहाँ तक आपकी पत्नी की बात है, मेरा ख्याल है कि उसके बारे में कोई भी फतवा देना आपके लिए बिल्कुल गलत होगा। यदि आप उससे अधिक बुद्धिमान हैं तो आपको उसका मार्ग–दर्शक बनकर उसे सहृदयता पूर्ण ढंग से सही मार्ग पर ले जाना धर्म है।

जो अधिकार एक पति को है वे सभी पत्नी को भी है, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। दोनों के कर्त्तव्य भिन्न हैं किन्तु उनके अधिकार कम ज्यादा नहीं है। स्त्री कमीज, पतलून पहनकर बंदूक लेकर घूमने निकले तो उसे रोकने का अधिकार पति को नहीं है। ऐसे कामों का जितना हक हम पुरुषों को है, उतना ही स्त्रियों को भी है। यदि स्त्री को सिनेमा न जाना है तो पुरुष उसे बाध्य नहीं कर सकता अथवा यदि स्त्री अकेली जाना चाहे तो पुरुष उसे नहीं रोक सकता। तात्पर्य यह है कि दोनों के साथ–साथ करने के कामों में उनमें जितना सहकार, सहयोग सध सके उतना अच्छा है।

पति–पत्नी में जहाँ तक हो सके सहकार होना अच्छा है, क्योंकि यह सहकार एकांगी वस्तु नहीं है। इसमें नाप–तौल हो ही नहीं सकती।

यह एकपक्षीय चीज ही नहीं है। पुरुष कहता आया है कि मैं तेरा मालिक हूँ, तू मेरी चीज है, मैं जैसे कहूँ, वैसे तुझे चलना पड़ेगा। इस प्रकार की भावना के लिए मेरे विचारों की दुनिया में कोई स्थान नहीं है।

भारत में हमारे सामने संतति निग्रह की कोई समस्या नहीं रह जाएगी बस जरूरी सिर्फ यह है कि जब वासना प्रेरित होकर उनके पति उनके निकट आए तो वे ना कहना सीखें। मेरे संपर्क में आने वाली स्त्रियों को मैं यह सिखा सका कि वे अपने–अपने पतियों की इच्छा का विरोध किस प्रकार करें।

विवाह का नाता जोड़कर तुम मित्र और बराबर वाले बन रहे हो। अगर पति स्वामी कहलाता है तो पत्नी स्वामिनी है। दोनों एक दूसरे के मालिक, एक दूसरे के साथी और जीवन के कार्य और कर्त्तव्य पूरे करने में एक दूसरे के साथ सहयोग करने वाले हैं।

अगर शराबियों की पत्नियाँ सचमुच उत्सुक हैं तो वे जरूर अपने आदमियों को राह पर ला सकती हैं। स्त्रियाँ नहीं जानती कि वे अपने पतियों पर कैसा स्थायी प्रभाव डाल सकती हैं। निस्सन्देह वे अनजाने तो प्रभाव डालती ही रहती हैं, पर यह काफी नहीं होता। उनमें चेतना आनी चाहिए और वह चेतना उन्हें बल देगी और मार्ग दिखाएगी कि अपने जीवन–साथियों के साथ कैसे व्यवहार किया जाए। तरस खाने की बात तो यह है कि अधिकतर स्त्रियाँ अपने पतियों के कामों में दिलचस्पी नहीं लेती। वे समझती हैं कि उन्हें दिलचस्पी लेने का अधिकार ही नहीं है। उसके मन में यह बात कभी आती ही नहीं कि जिस तरह पति का कर्त्तव्य अपनी पत्नी के चरित्र की रक्षा करनी है। उसी तरह पत्नी का कर्त्तव्य अपने पति के चरित्र की रक्षा करनी है, इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है कि पति और पत्नी एक दूसरे के गुण–दोषों के समान रूप से भागी हैं? परंतु पत्नियों को जगाकर उन्हें उनके सामर्थ्य और कर्त्तव्य–बोध कराने की ताकत स्त्री के अतिरिक्त किसमें हैं? मद्यपान के विरूद्ध स्त्रियों के आंदोलन का यह काम एक अंश मात्र है।

भारतीय जीवन में सब जगह यही रोना है। मैंने अक्सर कहा है कि पति ज्यादा बलवान और शिक्षित होता है इसलिए उसे अपनी पत्नी का शिक्षक बनकर उसमें कोई दोष हो तो सहन करना चाहिए। आपको अपनी पत्नी का बेमेल स्वाभाव सहन ही करना है और अपनी पत्नी को प्रेम से जीतना है, दबाब डालकर हरगिज नहीं। इससे यह नतीजा निकला कि आप अपनी पत्नी को खादी इस्तेमाल करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। पर आपको विश्वास रखना चाहिए, जैसे आप उसकी संपत्ति नहीं है वैसे ही आपकी पत्नी आपकी संपत्ति नहीं है। वह आपकी अर्द्धांगिनी है। आप उसके साथ यही समझ कर व्यवहार करें।

पत्नी की शिकायत करने पर पति से—

मेरी सलाह है कि अपनी पत्नी के साथ निवाहिए और तब तक हस्तक्षेप न कीजिए जब तक कि आपके पास उसके आचरण के विरूद्ध शिकायत करने की कोई वजह नहीं हो। अगर आपने किसी को अपना गुरु बनाया होता और उससे गुरुमंत्र लिया होता और अगर आप यह भेद अपनी पत्नी पर प्रकट न करते तो मुझे विश्वास है कि आप भी भेद बताने से इंकार करने पर अपनी पत्नी द्वारा हस्तक्षेप किया जाना पसंद न करते। मैं मानता हूँ कि पति–पत्नी के बीच कोई भेद या गोपनीयता नहीं होनी चाहिए। विवाह बंधन के प्रति मेरे मन में बड़ी ऊँची धारणा है। मैं मानता हूँ कि पति–पत्नी एक दूसरे में अपने को विलीन कर देते हैं। वे दो शरीरों में एक प्राण और एक प्राण में दो शरीर हैं। पर ये बातें यांत्रिक रूप से लागू नहीं की जा सकती। इसलिए जब आप एक उदार विचार के पति हैं तो आपको अपनी पत्नी के भेद बताने में हिचकिचाहट की कद्र करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

अन्तर्जातीय या अन्तधार्मिक विवाह में पति–पत्नी एक दूसरे के धर्म को आदर की दृष्टि से देखें। यदि वे लोग धार्मिक वृति के होंगे तो उनके बच्चे अनजाने ही उनके धर्माचरण से जो सुन्दर लगेगा, उसे

अपनाते जाएँगे और माता–पिता की ओर से किसी प्रकार की रूकावट के बिना वे अपनी रूचि के अनुसार अपने धर्म को अंगीकार कर लेंगे।

पति के संन्यासी हो जाने पर पत्नी को–

यदि आपका पति संन्यासी हो गया है तो आपको शुद्ध जीवन बिताते हुए अपनी रोटी खुद कमानी चाहिए। संन्यासी भगवा वस्त्र पहनने से ही हुआ जा सकता है, ऐसा नहीं है। परिग्रह नहीं करना चाहिए और केवल जरूरी सामान ही रखना चाहिए और कुछ न सूझे तो चरखा चलाना चाहिए और चरखा कातते–कातते रामनाम जपना चाहिए। मेरी दृष्टि में ऐसा संन्यास पति के संन्यास से कहीं उच्च स्तर का होगा। गाँव की सफाई, बच्चों की सफाई, विभिन्न सेवा कार्यों में लग जाना चाहिए। 'खाली दिमाग भूत का डेरा'। निठल्ला बैठने से मन में अनेक कुविचार पैदा होगा।

अंर्तधार्मिक विवाह होने पर—

पति–पत्नी मृत्यु पर्यन्त अपने–अपने धर्म पर कायम रहें। मेरी नजर में कुछ ऐसे स्त्री–पुरुष हैं जो पूरी तरह अपने–अपने धर्मों का पालन कर रहे हैं। लेकिन मैं यहाँ तक कहूँगा कि इसके लिए आपको अतीत के दृष्टांतों को खोजने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, बल्कि नए दृष्टांत पेश करना चाहिए ताकि डरपोक लोग अपना डर त्याग सकें।

पति का पत्नी के अनपढ़ होने की शिकायत पर—

तुम जानते हो मैं बैरिस्टर था और बा अनपढ़ फिर भी आज मैं अपने जीवन में कुछ प्रगति कर पाया हूँ, वह सब मेरी पत्नी का ही प्रताप है। अपनी पत्नी में और कोई दोष तो तुम बता नहीं पाए, किन्तु इससे मुझे लगता है कि तुम्हें कॉलेज की ही किसी लड़की से प्रेम तो नहीं है? पत्नी के निरक्षर होने के कारण दूसरा विवाह किया जाए, यह तो लड़कों का लड़कियों के प्रति निपट अन्याय ही है। मैं तो कहूँगा कि तुम में ही निपट अज्ञान भरा हुआ है। तुम अक्षर–ज्ञान संपन्न होते हुए भी अनपढ़ हो। तुम्हारी पत्नी पढ़ने को तत्पर है फिर भी तुम उसे नहीं पढ़ा सकते। इस कारण मुझे तो तुम्हारे ऊपर दया आती है।

हमारी स्त्रियाँ प्रसव के समय माता–पिता या सास–ससुर के यहाँ जाए इसमें हर्ज तो नहीं है किन्तु मुझे यह ठीक नहीं लगता। यह हमारा कर्त्तव्य है कि माता–पिता के वृद्ध हो जाने पर हमें यह भूल जाना चाहिए कि वे सिर्फ मेरे माता–पिता हैं, बल्कि वे सारे संसार के माता–पिता हैं। यह तभी संभव है जब हम उन्हें अपना गुलाम न समझें। प्रसव के समय पत्नी के साथ पति का रहना कर्त्तव्य है। [1]

परदा-प्रथा

हमें कितनी ही बहनों के दर्शन नहीं होते क्योंकि वे परदे में रहती हैं। मैं इन बहनों और भाइयों से भी, जो उन्हें परदे में रखने के लिए उत्तरदायी है, कहता हूँ कि हम अपने आधे शरीर को कुचल जाने की स्थिति में भारत का कार्य नहीं कर सकते। जिन बहनों ने यहाँ परदे में बैठने की व्यवस्था का अनादर करके स्वतंत्रता पूर्वक बाहर खुली हवा में बैठना पसंद किया है, उसके लिए इन्हें बधाई देता हूँ।

स्त्रियों को पर्दे के पीछे बैठे देखकर मेरा मन खिन्न हो गया। इससे मुझे बहुत दुःख और अपमान का अनुभव हुआ। मैंने सोचा कि पुरुषों के द्वारा पर्दे की बर्बर प्रथा को आग्रह के साथ कायम रखकर हिन्दुस्तान की स्त्रियों के प्रति कैसा अत्याचार किया जा रहा है। जिस जमाने में यह प्रथा शुरू की गई, उस समय इसका थोड़ा बहुत कोई उपयोग भले ही रहा हो मगर अब तो वह बिल्कुल बेकार हो चुकी है और इससे देश को असीम हानि पहुँच रही है।

सभाओं में आने वाली स्त्रियों के प्रति जो मैं विचार व्यक्त करता रहा हूँ उसका उनके शोर गुल के कारण उनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका है। जब तक वे अपने घरों की छोटी सी चारदीवारी के भीतर या उन पिंजरों में बंद है तब तक उनसे और किसी बात की आशा कैसे की जा सकती है? इसलिए जब वे किसी बड़े कमरे में इकट्ठी

होती हैं उनसे एकाएक ये आशा की जाती है कि वे किसी वक्ता की भाषा सुने, तब उनकी समझ में नहीं आता कि इन्हें स्वयं अपने या वक्ता के ख्याल से क्या करना चाहिए और शांति स्थापित हो जाने के बाद भी उनके मन में रोज घटने वाली साधारणतया घटनाओं तथा विषयों के प्रति रूचि पैदा करना वक्ता को कठिन मालूम पड़ता है। क्योंकि स्त्रियों को कभी स्वतंत्रता की शुद्ध वायु में साँस लेने का अवसर ही नहीं दिया गया है और इसलिए वे उन विषयों से नितांत अपरिचित रही हैं। मैं जानता हूँ कि वे पुरुषों के बराबर ऊँचा उठ सकती है। हमारी स्त्रियों को भी वही स्वतंत्रता क्यों नहीं प्राप्त है, जो पुरुषों को प्राप्त है और वे घर के बाहर निकलने तथा शुद्ध वायु का सेवन करने से वंचित क्यों रखी जाती हैं?

सतीत्व कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे पाल के आमों की तरह दाब दूबकर रखने से परिपक्व किया जा सकता है। उसे ऊपर से नहीं लादा जा सकता है। उसकी रक्षा पर्दे की दीवार से नहीं की जा सकती। उसका विकास तो भीतर से होना चाहिए और अवश्य ही उसका मूल्य तभी कुछ माना जाएगा जब वह सभी प्रकार के अवांक्षित आकर्षणों का सामना करने योग्य बन जाए। वह तो सीता जी के सतीत्व की भाँति अडिग और अजेय होगा। जो पवित्रता पुरुषों की ताक–झाँक का सामना न कर सके, वह अवश्य ही कोई बहुत निकम्मी सी चीज होगी। अगर मर्दों को मर्द होना है तो उन्हें इस लायक बनना होगा कि वे स्त्रियों का वैसा ही विश्वास कर सकें, जैसा स्त्रियों को मजबूरन उनका करना पड़ता है। ऐसा नहीं होने देना चाहिए कि जीवन में हमारा एक अंग पूर्णतः या अंशतः निकम्मा बना रहे।

हम आज भारत की नारियों के निर्विघ्न विकास का विरोध करके भारत में स्वतंत्रता प्रिय और स्वाधीन पुरुषों के विकास को रोक रहे हैं। हम अपनी स्त्रियों और अस्पृश्यों के प्रति जैसा व्यवहार करते हैं, वह हजार गुणा होकर हमारे सिर पर वापस आता है। हमारी निर्बलता अनिश्चितता, संकीर्णता और बेबसी का अंशतः यही कारण है। इसलिए आइए हम महान प्रयत्न करके इस पर्दे को समाप्त कर दें।

आप पर्दा–प्रथा को तोड़ें। कोई बात प्राचीन है, इसलिए वह अच्छी है, ऐसा मानना बहुत गलत है। यदि प्राचीन सब अच्छा ही होता, तो पाप कम प्राचीन नहीं है। परंतु चाहे जितना भी प्राचीन हो पाप त्याज्य ही रहेगा। पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि उसको कबूल नहीं कर सकती। पर्दे से होने वाली हानि स्वयं सिद्ध है। जैसा कि बहुत सी बातों का किया जाता है, उस प्रकार पर्दे का कोई आदर्श अर्थ करके उसका समर्थन नहीं करना चाहिए। आज पर्दा–प्रथा जिस हालत में विद्यमान है उसका समर्थन करना असंभव है।

सच्ची बात तो यह है कि पर्दा कोई बाह्य वस्तु नहीं है, वह एक आंतरिक वस्तु है। वाह्य पर्दा करने वाली कितनी ही स्त्रियाँ निर्लज्ज पाई जाती है, जो वाह्य रूप से पर्दा नहीं करती, परंतु जिसने आंतरिक लज्जा नहीं छोड़ी वह स्त्री पूज्यनीय है और ऐसी स्त्री आज जगत में मौजूद हैं।

पर्दे से होने वाली हानियों को देखें –

1. स्त्रियों की शिक्षा में बाधा डालता है।

2. स्त्रियों की भीरूता को बढ़ाता है।

3. स्त्रियों के स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

4. स्त्रियों और पुरुषों के बीच हो सकने वाले स्वच्छ संबंधों में बाधक बनता है।

5. स्त्रियों में नीच विकृति का पोषण करता है।

6. पर्दा स्त्रियों को बाह्य जगत से दूर रखता है इसलिए उन्हें उसका योग्य अनुभव नहीं हो पाता है।

7. पर्दा अर्धांगिनी धर्म, सहचारी धर्म में बाधा डालता है।

8. पर्दानशीन स्त्रियाँ स्वराज्य में हरगिज अपना पूरा हिस्सा नहीं दे सकती।

9. परदे से बाल–शिक्षा में रूकावट होती है।

इन सभी हानियों को देखते हुए सभी विचारशील लोगों का धर्म है कि वे पर्दे को तोड़ दें।

मुझे पर्दा–प्रथा में कभी विश्वास नहीं रहा है यह तेजी से समाप्त हो रहा है। जो लड़कियाँ यह साहस कर सकती हैं कि पर्दे को फाड़कर फेंक दें और अपने पड़ोसियों को दिखा दें कि उन्हें कोई हानि नहीं उठानी पड़ी है।

परदा वहम ही नहीं, उसमें मुझे पाप की बू आती है। परदा किससे रखें? क्या पुरुष मात्र विषयासक्त रहते हैं? क्या स्त्री अपनी पवित्रता बगैर परदा नहीं रख सकती? पवित्रता मानसिक बात है सभी मनुष्य में सहज होनी चाहिए। यदि इस बुद्धि प्रधान युग में स्त्री धर्म की रक्षा करना चाहती है तो उसे दरिद्रनारायण की सेवा करनी होगी और शिक्षण लेना होगा। विद्या पाने का कार्य परदा रखने के साथ कभी नहीं चल सकता है। परदा रखकर सीता रामजी के साथ जंगलों में भटकी होती। सीता से पवित्र स्त्री जगत में कभी हुई है?

बहनो से कहो, परदा तोड़ो, धर्म रखो।

हिन्दू बहनों का धर्म हो जाता है कि वे अपनी मुसलमान बहनों से हिल–मिल कर उनसे मित्रता बढ़ाकर उन्हें परदे की दासता से छुड़ाएँ। अगर हिन्दू बहनें पड़ोसी के अपने इस कर्त्तव्य को पूरा करने में चूकती हैं तो जाहिर है कि इसका कारण उनकी अपनी ही कमी होगी।

आज हिन्दुस्तान आजादी के लिए तड़प रहा है। लेकिन अगर उसकी आधी आबादी निष्क्रिय रह गई तो हिन्दुस्तान की जनता को मिलने वाली आजादी संपूर्ण नहीं होगी। इसलिए मैं यहाँ आए हुए घर के बड़े–बूढ़े से अत्यन्त नम्रता पूर्वक यह विनती करता हूँ कि वे परदे के रिवाज का औरतों पर जो प्रभाव पड़ता है, उसपर विचार करें और कम से कम समय में उसे मिटा दें।

बहनें सोचे तो उन्हें जरूर लगेगा कि वे अपना कितना समय बेकार गँवाती हैं। आप जो परदा रखती हैं, उसके बजाय मन में लज्जा रखें। परदे का अर्थ है–लज्जा, मर्यादा, विवेक।

पर्दा–प्रथा मिटाना ही चाहिए, इस प्रथा से स्त्रियाँ सब प्रकार से पूर्ण अंधकार में रह जाती है।

सच्चा पर्दा तो दिल का है बाहर के पर्दे की क्या कीमत है? मैं तो यहाँ तक चला गया हूँ कि कुरानशरीफ में भी बाहर का पर्दा नहीं। जिस जमाने में हम रह रहे हैं, वह कितनी तेजी से आगे बढ़ रहा है। आज यहाँ कल वहाँ है। ऐसे जमाने में हम निकम्मे पर्दे को रखकर क्या करेंगे। 1

शास्त्र में स्त्री निन्दा

मैं पुकार–पुकार कर कहता हूँ कि जब तक भारत में स्त्रियाँ तनिक भी दबी रहेंगी या पुरुषों की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त करेगी, भारत का सच्चा उद्धार, नहीं हो सकता। स्मृतिकारों ने स्त्रियों के संबंध में जो कुछ लिखा है, उसका सर्वथा समर्थन नहीं किया जा सकता। स्मृतियों के वचन ही बाल–विवाह और विधवाओं पर लगाए गए नियंत्रण आदि के मूल में है। उन्हें शूद्रवर्ग के साथ रखने में हिन्दू समाज को कल्पनातीत आघात लगा है। स्मृतिकारों की अपूर्णता के कारण या प्रक्षिप्त श्लोकों को मिलाया जाना है, या हमारे अधःपतन के काल में मान्यता प्राप्त स्मृतिकारों द्वारा अपने–अपने श्लोकों को जोड़ा जाना है, इन श्लोकों को निकालकर शेष स्मृतियों की अपूर्वता सिद्ध की जा सकती है।

हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में स्त्रियों के संबंध में जो आक्षेप हैं उसके निवारण का महान प्रयत्न किया जाए। प्रथम कार्य तो यह है कि यथा–संभव अधिक से अधिक स्त्रियों को उनकी दुरावस्था का ज्ञान कराया जाए। उसकी मानसिक शक्ति पुरुष के समान है। जितनी स्वतंत्रता पुरुष को है उतना ही भोगने का अधिकार स्त्रियों का भी है।

भारत में स्त्री पुरुषों का क्या संबंध है? स्त्री का आम समाज में क्या स्थान है, इस बातों पर विचार ही नहीं किया गया है। जब तक हमारी स्त्रियाँ हमारे विषय–भोगों की सामग्री और रसोई करने वाली

रहकर हमारी जीवन सहचरी, अर्धांगिनी और सुख–दुख की साझेदार नहीं बनती तब तक हमारे सारे प्रयत्न मिथ्या है। तुलसीदास जी को मैं पूज्य मानता हूँ लेकिन मेरी पूजा अंधी नहीं है। या तो 'ढोल, गँवार शूद्र, पशु, नारी........... ये सब ताड़न के अधिकारी'...........चौपाई प्राक्षेपिक है या उन्होंने बिना विचारे लिख दिया है। संस्कृत वचनों को तो शास्त्र वाक्य ही मान लिया गया है। स्त्रियों को हीन समझने की जो प्रथा पड़ी हुई है, हमें उसे जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।

कोई–कोई पुरुष अपनी स्त्री को जानवर के बराबर समझते हैं। इस स्थिति के लिए कुछ संस्कृत के वचन और तुलसीदास जी की यह प्रसिद्ध चौपाई जिम्मेदार है। यदि यह प्रक्षिप्त नहीं है, तो उसे बिना विचारे प्रचलित प्रथा के अनुसार जोड़ दिया।

स्त्री जाति की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में स्त्रियों के संबंध में जो आक्षेप है, उनके निवारण का महान प्रयत्न किया जाए। मेरी अल्पमति से हमें इसके लिए मुख्यतः सीता, दयमंती और द्रौपदी जैसी पवित्र, अत्यन्त दृढ़–संकल्प और संयमी नारियाँ उत्पन्न करनी होगी। उस युग में जिन हिन्दुओं ने उनकी पूजा की थी, वे आज इन आधुनिक सती साध्वियों की भी पूजा करेंगे। हिन्दू उनके वचनों को शास्त्र वचनों के समान प्रमाण मानकर ग्रहण कर लेंगे और स्मृति आदि शास्त्रों में जो आक्षेप है उनसे लजाऐंगे एवं उन्हें विस्मृत कर देंगे। हिन्दू–धर्म में ऐसे परिवर्त्तन सदा ही होते आए हैं और होते रहेंगे, इसलिए यह धर्म अब तक जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगा।

स्त्री–धर्म (रजस्वला) होने के पहले ही शास्त्रों में विवाह का आदेश है। बाद में करने से तो धर्मसंकट पैदा होता है? के जबाब में–मुझे तो यह धर्म–संकट नहीं जान पड़ता। शास्त्रों के नाम से प्रसिद्ध पुस्तकों में जो कुछ लिखा है वह सच ही है और उसमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता, ऐसा कहने या मानने वाले मनुष्य के समक्ष तो पल–पल धर्म–संकट उपस्थित होता रहेगा। एक ही श्लोक के अनेकार्थ होते हैं और वे भी परस्पर विरूद्ध तक। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में कुछ सिद्धान्त अटल होते हैं और कुछ ऐसे जो विशेष काल और क्षेत्र आदि का विचार करके बनाए जाते हैं और उसी हद तक लागू किए जा सकते हैं? उत्तर ध्रुव में जहाँ छः महीने तक सूर्य अस्त नहीं होता, अगर कोई रह सके तो उसे संध्या किस समय करनी चाहिए? उसे स्नानादि के संबंध में क्या करना चाहिए? मनुस्मृति में खाद्याखाद्य के अनेक नियमों का विधान किया गया है। इस समय उनमें से भी एक का भी पालन नहीं किया जाता। उसके सभी श्लोक एक ही मनुष्य द्वारा अथवा एक ही समय में रचे गए हों, यह बात भी नहीं है। इसलिए जो मनुष्य ईश्वर से डरकर चलना चाहता है और नीति संबंधी नियमों को भंग भी नहीं करना चाहता, उसके सम्मुख तो एक ही मार्ग है कि जो बात नीति विरूद्ध दिखाई दे उसको त्याग ही दे। स्वेच्छाचार कभी धर्म नहीं हो सकता। हिन्दू–धर्म में संयम की कोई सीमा नहीं बाँधी गई है। जिस बाला को वैराग्य हो गया हो वह क्या करें? स्त्रीधर्म (रजस्वला) को प्राप्त होने का अर्थ क्या है? जो अवस्था स्त्री–जाति के लिए सामान्य है उसको प्राप्त होने पर लड़की का विवाह किया ही जाना चाहिए, ऐसा आग्रह कैसे किया जा सकता है? स्त्री–धर्म को प्राप्त होने पर ही विवाह किए जाने की मर्यादा तो समझ में आती है। हम शास्त्रों के अर्थ के पचड़े में पड़कर कदापि अत्याचार नहीं कर सकते। जो हमें मोक्ष की ओर प्रवर्तित करे, वे ही शास्त्र हैं, जो हमें संयम की शिक्षा दे, वही असली धर्म है। जो मनुष्य बाप–दादों के कुएँ में डूब मरता है, वह मूर्ख ही माना जाएगा। अखा भगत ने शास्त्रों को अँधेरा कुआँ माना है। ज्ञानेश्वर ने वेदों को संकुचित बताया है। नरसिंह मेहता ने अनुभव को ही ज्ञान माना है।

स्त्री–धर्म के प्रारंभ के पहले विवाह धर्म नहीं वरन् अधर्म है और सर्वथा त्याज्य है।

मासिक धर्म स्त्रियों के लिए मासिक व्याधि है। इस समय उसे अत्यन्त शांति की आवश्यकता होती है। ऐसे समय में भी पुरुष का संग उसके लिए भयंकर वस्तु है।

मासिक धर्म होने के बाद पुस्तक छूना चाहिए या नहीं के उत्तर में—ऐसा प्रश्न छूआछूत के कलंक से कलंकित इस अभागे देश में ही उठ सकता है।

ऐसा कहा जाता है कि स्त्रियों में ईर्ष्या–भाव बहुत होता है, लेकिन पुरुषों में ईर्ष्या कम होती है ऐसी बात नहीं है। उसी तरह सभी स्त्रियाँ भी ईष्यालु नहीं होती। बात सिर्फ उतनी है कि चूँकि स्त्रियों को चौबीसों घंटे घर में रहना पड़ता है। इसलिए उनकी ईर्ष्या अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

स्त्रियों ने ऐसा क्या किया कि इनके बारे में तुलसीदास जैसे व्यक्ति ने भी उनके लिए अपमानसूचक विशेषणों का प्रयोग किया है? इसे आप तुलसीदास का दोष कहें अथवा परिस्थिति का, लेकिन यह दोष तो है ही।

शास्त्रों में स्त्रियों में वासना अधिक होने के आरोप में—जहाँ तक स्त्रियों की बहुत बड़ी संख्या का सवाल है, वे अपने ही काम में इतनी व्यस्त रहती हैं कि विषय–वासना से संबंधित विचारों के लिए उनके पास अवकाश ही नहीं है। यह तो पुरुषों का ही गुण है कि वासना जब उसपर हावी हो जाए तो वह आक्रामक हो उठता है। सहिष्णुता दुर्भायवश, संसार भर की औरतों के मामले में बिल्कुल सच है और मैं नहीं समझता कि स्त्रियों में अधिकांश इस कमजोरी से दूर हो सकेगी, शायद उनकी संरचना ही ऐसी है कि जो प्रभावशील विरोध की वृति के विकास में बाधक है, उन चन्द सुनिश्चित परिस्थितियों को छोड़कर जो विशेष संस्कृति की देन है। स्त्री में अपने को नियंत्रित करने और घुटकर रह जाने की विलक्षण क्षमता होती है, चाहे उसके दिल में वासना का तूफान ही क्यों न उठ रहा हो, वह आक्रामक नहीं होती।

मेरे विचार में यह विश्वास कि कुमारिका मात्र के स्पर्श या दर्शन से पुरुष विकार वश होता ही है, पुरुष के पुरुषत्व को लजाने वाला है। अगर यह बात सच हो तो फिर ब्रह्मचर्य एक असंभव बात ठहरती है।

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी
ये सब ताड़न के अधिकारी।

रामायण की इस पंक्ति का आधार लेकर समाज में पत्नी दण्डनीय ठहराई जाती है, उसे दंड दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यह चौपाई गोस्वामी तुलसीदास जी की नहीं है। यदि है तो भी कह सकते हैं कि इन शब्दों में तुलसीदास जी ने अपना अभिप्राय नहीं प्रकट किया है बल्कि अपने समय में प्रचलित रूढ़ि का निरूपण किया है। यह भी असंभव नहीं कि इस बारे में सहज ही उन्होंने उस समय की प्रथा पर विचार किए बिना ही अपनी ऐसी सम्मति दे दी हो। रामायण भक्ति निरूपण का ग्रंथ है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सुधारक की दृष्टि से रामायण नहीं लिखी। यही कारण है कि उन्होंने रामायण में अपने जमाने की बातों का प्राकृत चित्र खींचा है। सहजभाव से उनका वर्णन किया है। इस वर्णन के सदोष होने पर भी रामायण जैसे अद्वितीय ग्रंथ का महत्व कम नहीं होता। जैसे रामचरितमानस से भूगोल की शुद्धता की आशा नहीं की जा सकती, ठीक इसी तरह हम अपनी वर्त्तमान नई दृष्टि के प्रतिपादन की आशा भी उस ग्रंथ से न करें। गोस्वामी महाराज ने स्त्री के बारे में जो कुछ भी क्यों न माना हो, उसमें संदेह नहीं कि जो मनुष्य स्त्री को पशुतुल्य समझता है, उसे अपनी मिल्कियत मानता है, वह अपने अर्द्धांग का विच्छेद करता है।

हिन्दू–सभ्यता में तो स्त्री का इतना सम्मान किया गया है कि प्राचीन काल में स्त्री का नाम प्रथम पद रखता था। उदाहरणार्थ हम सीताराम या राधाकृष्ण कहते हैं। जो सभ्यता इतनी उच्च है, उसमें स्त्रियों का दर्जा पशु या मिल्कियत के समान कदापि नहीं हो सकता।

"बुधिबल, सील, सत्य, सब मीना, वनसी सम त्रिय कहहिं प्रवीणा" यह व्यंग्य नारी को लेकर नहीं अपितु पुरुष की विषय–भोग की वृति को लेकर किया गया है।

मासिक धर्म के बारे में जो झूठी लज्जा है, मैं चाहूँगा कि सभी लड़कियाँ इसे छोड़ दें। झूठी लज्जा लड़कियों को इसे समझने और इसका उचित नियंत्रण करने से रोकती है।

जब आप स्त्री के बारे में लिखने के लिए कलम उठाएँ तो अपनी जननी को अपने नजर के सामने रखें। यदि आप इस बात का विचार करते हुए लिखेंगे तो आपकी लेखनी से जो साहित्य निकलेगा वह जैसे सुन्दर आकाश से वर्षा की बूँदे झरती हैं, इसी तरह निःसृत होगी और जैसे वर्षा की बूँदे धरती का पोषण करती हैं, उसी प्रकार वह भी स्त्री रूपी धरती का पोषण करेगा।

रजस्वला धर्म को मैं, मेरे धर्म में जानबूझकर स्थान नहीं देता हूँ। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई भी विषयी पुरुष रजस्वला स्त्री का स्पर्श विषय–तृप्ति के लिए कर सकता है। वहम मात्र का मैं कट्टर विरोधी हूँ।

कुछ पुरुष, स्त्री को पशु के समान मानते हैं। इस स्थिति के लिए संस्कृत के कई श्लोक तथा तुलसीदास का प्रसिद्ध दोहा उत्तरदायी है। तुलसीदास ने एक स्थान पर लिखा है 'ढोल गँवार.........अधिकारी'। मैं तुलसीदास जी की पूजा करता हूँ लेकिन मेरी पूजा अंधी नहीं है। या तो यह दोहा क्षेपक है या यदि तुलसी दास जी का ही है तो उन्होंने इसे बिना विचारे प्रचलित रूढ़ि के अनुसार लिख दिया प्रतीत होता है। संस्कृत श्लोक के विषय में तो भ्रांति है कि जो कुछ संस्कृत में लिखा गया है, वो शास्त्र का ही कथन है। हमें उस भ्रांति को दूर करना है और उस प्रथा का जड़ मूल उखाड़ फेंकना है जो स्त्री को नीचा मानती हैं। 1

पुत्र-पुत्री में समानता

स्त्री को हमारे शास्त्रों में अर्धांगिनी माना है। परंतु अर्धांगिनी तो क्या, हम उसे अपना एक खिलौना समझते हैं। हमारे देश में अब भी उसे दासी की तरह रखा जाता है। लड़की का जन्म होते ही कुटुम्ब में उदासी छा जाती है। लड़के के जन्म को एक उत्सव के समान माना जाता है। इसलिए जब तक यह रोग जड़ से नहीं मिटा दिया जाता, तब तक स्त्री जाति कभी आगे नहीं आ सकती। जितना उत्साह लड़के के जन्म का होता है, उतना ही उत्साह जब लड़की के जन्म का भी माना जाएगा, तभी स्त्री–पुरुष समान समझे जाएँगे। इसलिए प्रत्येक कार्यकर्त्ता स्त्री को अपनी माँ बहन या लड़की की तरह से आदर के साथ सम्मानित करें।

क्या तुम्हारी जैसी स्त्री के मन में भी बेटा–बेटी का भेदभाव है? मेरा तो अभी तक यही अनुभव रहा है कि बेटियाँ माँ–बाप की सेवा में जितनी तत्पर रहती हैं उतनी भावना तो सौभाग्य से बेटों में दिखाई पड़ती है। तुम्हारे जैसी समझदार स्त्री में भी स्त्री जाति के प्रति इतनी बेरूखी।

बच्ची का स्वतंत्रता के नाम पर नादानियाँ करने पर–तू स्वाधीनता का अर्थ नहीं समझती। जब तू अपनी इच्छा से बुजुर्गों को अपने पत्र दिखाती है तो ऐसा करके तू अपनी स्वाधीनता नहीं खोती, बल्कि अपनी सुरक्षा खोजती है। यदि कोई हमारे घर की देहली पर जमकर बैठ जाए तो वह कुर्क अमीन की तरह हमें हमारी स्वाधीनता से वंचित कर देगा, परंतु यदि हम घर का पहरा देने को द्वारपाल रखें तो इससे हमारी स्वाधीनता नहीं जाती बल्कि उसकी रक्षा होती है। इसी तरह यदि तू अपनी अज्ञानावस्था में, कच्ची उम्र में, बड़ो को अपना पहरेदार समझकर उनके सामने अपना दिल खोलेगी, उन्हें अपने पत्र दिखाएगी तो तू पराधीन नहीं होगी बल्कि अपनी स्वाधीनता की सुरक्षा खोज

पाएगी। मेरी तीव्र इच्छा है कि तू स्वाधीन बन इसी से अपने माता–पिता को सबकुछ बता दे।

मैं अपने को हजारों लड़कियों का पिता मानता हूँ। लड़कियों के माता–पिता बनने का प्रयत्न मेरा सदा से रहा है। इसी से मैं आप लोगों से कहना चाहता हूँ कि लड़कियों में टीम–टाम का फैशन बढ़ रहा है। हमारा देश इस सत्यानाशी फैशन से दिन रात कंगाल होता जा रहा है। यदि हम सभी भोग–विलास में पड़ गए तो हमारा नाश हो जाएगा। इतिहास से पता चलता है कि भोग में डूबी हुई जातियाँ नष्ट हो जाती हैं। भोग में डूबकर उबरना कठिन ही है। इससे मेरा विनय है कि फैशन को त्याग दें।

आज भी इस हतभाग्य देश में कन्यावध जैसी निर्दय अमानुषी प्रथा चल रही है। यह मानने में कष्ट होता है। कन्या वध क्यों? कन्या बोझ क्यों ?

हिन्दू शास्त्र में पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उसकाल के लिए था जब समाज में शस्त्र युद्ध को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था और पुरुष वर्ग की बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारण एक से अधिक पत्नियों की भी इजाजत थी और अधिक पुत्रों को बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टि से देखें तो एक ही संतति धर्मजा या धर्मज है। मैं पुत्र और पुत्री के बीच भेद नहीं करता हूँ, दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।

अपने पिता की सेवा के लिए अपनी जिंदगी न्यौछावर करने वाली लड़कियाँ प्रशंसनीय हैं। मुझे ऐसी पुत्रियाँ बेहद पसंद हैं।

मैं पुत्रियों को पुत्रों के बराबर संपत्ति में हिस्सा देने के पक्ष में हूँ।

यह विचार ही गलत है कि घर का काम सिर्फ लड़की करे। लड़कों को भी रसोई में सफाई करने में, बरतन माँजने, कपड़े धोने चाहिए। घर का काम सीखने की जितनी जरूरत पुत्री को है उतना ही पुत्र को भी है।

आपकी बहन आपकी पुत्री नहीं है बल्कि आपके पिता की पुत्री है, इसी से वह आपके समकक्ष है। आप उसका सम्मान करें।

आप अपनी बहन की निगरानी नहीं कर सकते। वह अपनी इच्छा से कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है। आप खुद में सुधार करें बस यही आप कर सकते हैं।

परिवार (कुटुम्ब) में सिर्फ भाई नहीं बहने भी है और मैं तो कहूँगा कि जीवमात्र मेरा कुटुम्ब है, किन्तु प्रसंगवश वे मुझपर विशेष निर्भर है।

ईश्वर की सृष्टि में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपने लड़के और लड़की में भेद करता है या लड़की को कमतर मानता है। अगर लड़कियाँ ईश्वर की घटिया सृष्टि हैं, तो आप खुद भी घटिया हैं, क्योंकि आपकी उत्पत्ति भी उसी से हुई है।

आभूषण एवं साज श्रृंगार

यदि स्त्रियाँ पुरुषों के समान उनकी सहभागिनी बनना चाहती हैं तो उसे पुरुषों के लिए, अपने पति के लिए भी अपने शरीर का साज श्रृंगार करने से इंकार कर देना चाहिए।

स्त्री को स्वयं पुरुष की वासना–तृप्ति का साधन समझना बंद कर देना चाहिए। इसका इलाज उनके अपने ही हाथ में ज्यादा है। उन्हें अपने पति के लिए भी अपने शरीर के साज श्रृंगार करने से इंकार कर देना चाहिए। मैं सीता के विषय में इस प्रकार कभी नहीं सोच सकता कि उन्होंने राम को रिझाने के लिए शारीरिक श्रृंगार पर एक क्षण भी नष्ट किया हो।

मैं शारीरिक सुखों के पीछे दौड़ने वाले आधुनिक कृत्रिम जीवन को त्यागने का प्रचार इसलिए करता हूँ, और स्त्री–पुरुष से सादगी का जीवन अपनाने के लिए इसीलिए कहता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि पशुता के स्तर से नीचे उतरने से अपने को बचाने का केवल यही मार्ग रह गया है कि हम समझ–बूझकर सादगी की ओर लौट चलें।

बालिकाओं के अंगों का छिदवाना मुझे तो जंगलीपन लगता है। मैं नहीं जानता कि नाक–कान छिदवाना वैदिक विधि है या नहीं। परंतु यदि यह साबित भी हो जाए कि यह वैदिक विधि है तो भी जिस प्रकार आज नरमेघ नहीं किया जा जाता, उसी प्रकार मेरा यह कहना है कि नाक–कान भी नहीं छिदवाने चाहिए।

स्वराज्य की कुंजी स्त्रियों के पास है, परंतु उन्हें जागृत कौन करे ? असंख्य स्त्रियाँ ऐसी हैं, जिन्हें कोई काम नहीं है, उन्हें कौन उद्यमी बनाए? माताएँ बचपन से ही बालकों को बिगाड़ती हैं, उन्हें कौन रोके? वे अपने बालकों को गहनों और अनेक प्रकार के कपड़ों से लादे रहती हैं। छोटी–छोटी बालिकाओं का ब्याह रचा देती है। स्त्रियों के गहने देखकर तो मैं हैरान हो जाता हूँ। उन्हें कौन समझाए कि गहनों से सौन्दर्य नहीं, सौन्दर्य तो हृदय में है।

याद रखिए, स्त्री का सौन्दर्य उसके कपड़ों या जेवरों में नहीं बल्कि उसके हृदय की निर्मलता में होती है।

मैं आपसे पूछता हूँ कि वह कौन सी चीज है जिसके कारण स्त्री पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा जेवर लादती हैं? महिला मित्रों ने मुझे बताया कि औरत पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए ऐसा करती हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि यदि आप संसार के विविध कार्यों में अपनी भूमिका निभाना चाहती हैं तो आपको पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए गहनों से सजने से इंकार कर देना चाहिए।

यदि मैं स्त्री जन्मना होता तो मैं पुरुष के इस दंभ के विरूद्ध विद्रोह कर देता कि स्त्री उसके खेलने की चीज है और इसलिए पैदा हुई है। स्त्री के मन में प्रवेश करने की नीयत से मैं मानसिक रूप से स्त्री ही बन गया। मैं अपनी पत्नी के साथ जैसा व्यवहार किया करता था, उससे भिन्न व्यवहार करने का जब तक मैंने निश्चय नहीं किया, तब तक मैं उसके हृदय में प्रवेश नहीं कर सका। आप अपनी खुद की सनक और पसंद की गुलाम होने से और अपने पुरुषों की गुलाम होने से इंकार कर दें। अपने को सजाइए मत, इत्र और

लवेंडर के पीछे मत जाइए। यदि आप सुगंधित होना चाहती है तो वह सुगंध आपके हृदय से निकलनी चाहिए और तब आप पुरुष को ही नहीं मानवता को भी अपने वश में कर लेंगी। आपका यह जन्मसिद्ध अधिकार है। पुरुष स्त्री से पैदा होता है, वह स्त्री का ही हाड़–मांस है। अपनी शक्ति पहचानिए और अपना संदेश एक बार फिर दीजिए।

आपके माता–पिता आपको गुड़िया बनने के लिए स्कूलों में नहीं भेजते, इसके विपरीत आपसे दया की देवी बनने की अपेक्षा की जाती है। जब कोई दया की देवी बन जाती है, तो वह तुरंत अपनी चिन्ता छोड़ कर और जो लोग उनसे अधिक दीन–दुखी और अभागे हैं, उनकी चिन्ता ज्यादा करने लगती है।

पुरुष ने अपनी वासना के लिए स्त्री को पतिता बना दिया है। उसने स्त्री की आत्मा को प्रशस्त करने की बजाय उसके शरीर की प्रशस्ति आरम्भ कर दी। वह अपनी इस चाल में इतना ज्यादा सफल रहा कि आज स्वयं स्त्री यह महसूस नहीं कर पाती है। उन्हें भी शारीरिक श्रृंगार में इतना आनंद इसलिए आता है क्योंकि हम पुरुषों ने उन स्त्रियों की आत्मा को ही बिल्कुल कुचल दिया है।

स्त्री अपने जेवरों के कारण नहीं बल्कि अपने हृदय की पवित्रता के कारण पूजनीय होती है।

जहाँ भी मैं बहनों को जेवरों से लदी देखता हूँ तो मेरी भूखी आँखें उन गहनों पर टिक जाती हैं। गहनों की माँग करने में छिपी हुआ मंशा भी होती है। स्त्रियों को गहनों और जेवरों की बेहद लालसा से मुक्त करना।

आप अपनी पत्नी को उसकी इच्छा के विरूद्ध गहने त्याग देने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। लेकिन आपको अपनी वासना–विहीन निःस्वार्थ प्रेम के द्वारा और अपने दिन ब दिन बढ़ते आत्म–निग्रह के द्वारा उसे राजी कर लेने की कोशिश करनी चाहिए।

मैंने यह निष्कर्ष निकाला है कि स्त्री को विकारी पुरुषों ने गिराया है। उसे अपने को लुभाने वाले हाव–भाव सिखायें, बनाव–श्रृंगार करना

सिखाया। स्त्री ने इसमें अपनी पराधीनता नहीं देखी। उसे भी विलास अच्छे लगे इसलिए अपने नाक–कान छेदे और पैरों में बेड़िया पहनकर वह गुलाम बनी। नाक की नथ या कान की बाली से, लंपट पुरुष–स्त्री को एक घड़ी में घसीट ले जाए। इस प्रकार अपंग बनाने वाली चीज समझदार स्त्री क्यों पहनती होगी? यह मेरी समझ में नहीं आता। सच्ची शोभा तो हृदय में है। प्रत्येक स्त्री बाह्य शोभा से नाक छिदवाने से बचें। हम पशु को नाथते हैं क्या इतना काफी नहीं है ?

स्त्रियों के गहने के शौक के लिए मैं मानता हूँ कि पुरुष इसके लिए जिम्मेदार हैं या पहले थे, अब वे इसके लिए उतने जिम्मेदार नहीं रहे। फिर भी स्त्रियों को अपनी जिम्मेदारी इसमें कुछ कम नहीं है।

यह शौक कहाँ से और कैसे पैदा हुआ मैं इसका इतिहास नहीं जानता। किन्तु मैं सोचता हूँ कि स्त्रियाँ पैरों में जो गहने पहनती हैं, वे उनके कैदीपन की निशानी है। पैर के कुछ गहने तो इतने वजनदार होते हैं कि स्त्री उसे पहनकर दौड़ना तो दूर तेजी से चल भी नहीं सकती। अनेक स्त्रियाँ हाथ में इतने सारे गहने पहनती हैं कि उन्हें पहनने पर हाथ से ठीक तरह से काम भी नहीं लिया जा सकता। इसीलिए ऐसे गहनों को मैं हाथ पैर की बेड़ियाँ ही समझता हूँ। कान, नाक छिदाकर जो गहने पहने जाते हैं, मेरी नजर में उनकी उपयोगिता यही है कि आदमी औरत को जैसे नचावे वैसे नाचने में उनसे मदद मिलती है। एक छोटा सा बच्चा भी अगर किसी स्वस्थ स्त्री का नाक या कान का गहना पकड़ ले तो उसे वश में कर सकता है। इसलिए मेरी राय में तो ऐसे खास गहने सिर्फ गुलामी की निशानी है।

जिस स्त्री ने हाथ–पैर, कान–नाक और बालों में पुराने गहने लाद रखे हैं, वह अपने शरीर के उन–उन अंगों को साफ नहीं रख सकती। उन जगहों पर मैल की तह जमी हुई होती हैं। उसमें कई गहने तो ऐसे होते हैं जिन्हें रोज–रोज निकाल भी नहीं सकते।

आजकल तो स्त्रियाँ ऐसे गहने पहनने लगी है, जो जल्दी पहने या उतारे जा सकें और खूब पैसे हुए तो सोने–चाँदी की जगह हीरे–मोती के गहने बनवाती हैं। भले ही उन गहनों में कम मैल जमता हो तो भी उनकी कोई उपयोगिता नहीं होती और जो शोभा होती है वह भी काल्पनिक।

समझदार और पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ भी गहनों का शौक क्यों करती हैं? विचार करने से मालूम होता है कि और बातों की तरह इस बारे में भी रूढ़ि ही प्रधान है। हम अपने हर एक काम के लिए कारण की तलाश नहीं करते, उसके अचौत्यि और अनौचित्य का विचार नहीं करते। एक बार रूढ़ि की नकल की कि बाद में वहीं बात हमें स्वतंत्र रूप से रूचने लगती है और इसी का नाम विचार–शून्य जीवन है।

किन्तु जो स्त्रियाँ जाग उठी हैं, जो स्वयं स्वतंत्र रूप से विचार करने लगी हैं, जिन्हें देश सेवा करनी है, वे गहने आदि के मामले में अपनी विवेक बुद्धि से काम क्यों नहीं लेतीं?

गहनों के उत्पत्ति के बारे में जो साधना मैंने की है अगर वह ठीक ही हो तो चाहे जैसे हल्के और खूबसूरत गहने क्यों न हों, वे सर्वथा त्याज्य हैं। बेड़ियाँ सोने की हों या हीरे या मोती से जड़ी, तो भी आखिर है तो बेड़ियाँ ही। अँधेरी कोठी के बंद कमरों में, या महलों में, दोनों में बंद किए गए स्त्री–पुरुष कैदी ही तो कहे जाएँगे।

स्त्री की शोभा किसमें है? उसके गहनों में, उसके हाव–भाव में, उसकी नित नई पोशाक में या उसके हृदय और उसके आचार–विचार में? मणिधर सर्प के मुख में हलाहल भरा है। इसलिए मणि का मुकुट धारण करने पर भी न कोई उसके दर्शन करता है और न कोई उसे गले ही लगाता है।

सोने की ईंटो को दरिया में फेंकना और स्त्रियों के गहने बनाने में पैसे खर्चना लगभग दोनों बातें एक हैं। मैंने लगभग शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि कुछ गहने आफत के वक्त बेच दिए जाते हैं तो यह माना जा सकता है कि कुछ उपयोग हुआ। बेचने से पहले घिसाई में जो कुछ नष्ट हुआ सो हुआ ही, दूसरे गहने के खरीददार को गहना बेचते समय कभी भी मूल कीमत नहीं मिलती, इससे स्पष्ट

नुकसान उठाना पड़ता है। इसलिए जो स्त्री गहनों को स्त्री धन या आपद धन के रूप में रखना चाहती हैं तो उसे अपने नाम पर नकद रुपया ही बैंक में खाता खुलवाकर रखना चाहिए।

अधिकतर आभूषण कलाविहीन ही होते है, कुछ निश्चय ही भद्दे और मैल भरने वाले होते हैं–जैसे कड़े, गले की भारी–भारी हँसलिया, सिर के आभूषण और पहुँची से लेकर कुहनी तक चूड़ियों पर चूड़ियाँ, ऐसे ही गहने हैं। सिर के आभूषण बालों को सँवारने के लिए नहीं बल्कि उलझे–पुलझे बिना धुले और बहुधा बदबू मारते हुए बालों के श्रृंगार के लिए ही पहने जाते हैं। मेरी राय में कीमती गहने पहनने से देश को स्पष्ट नुकसान पहुँचता है। बहुत सारी स्त्रियों ने गहने देने के बाद मुझे इस बात के लिए आशीर्वाद दिया है कि मैंने उन्हें उन व्यर्थ की चीजों से छुटकारा दिया, जिन्होंने उन्हें गुलाम बना रखा था।

हमारे यहाँ की शिक्षित कन्या न गुड़िया बने, न सुन्दर नर्त्तकी वरन सुन्दर स्वयं–सेविका बनें।

बेचारी स्त्री तो गुलाम है उसके नाक–कान छेदने की क्रिया में मुझे तो हमेशा उसकी गुलामी की निशानी ही नजर आई है। उसके कान की बाली में रस्सी बाँधकर उसे बैल की तरह खींचा जा सकता है।

जैसे जो कैदी जंजीरों को भूल से जेवर मानकर सीने से चिपकाये रहते हैं–उसी तरह की लड़कियों और यहाँ तक कि बड़ी उम्र की स्त्रियों को भी अपने सोने–चाँदी की जंजीरों को तो तोड़ना मुश्किल है।

सौन्दर्य आभूषणों अथवा अच्छे–अच्छे कपड़ों में नहीं बल्कि वह कोई अच्छा काम करने और अपने आपको दूसरों की सेवा में समर्पित करने में समाहित हैं। 1

स्त्रियों के सद्गुण

स्त्रियों को पुरुषों के पीछे–पीछे चलने की जरूरत नहीं, स्त्रियों में नवीन भावनाओं के सृजन तथा उनके व्यवहार में लाने की जो शक्ति विद्यमान है वह पुरुषों में नहीं है। स्त्री गंभीर, धैर्यवान और अधिकतर पुरानी वस्तुओं से चिपककर रहने वाली होती है। इसलिए कोई नई वस्तु सूझ पड़ती है तो उसकी उत्पत्ति स्त्री के हृदय कमल से होगी।

यदि मैं पुरुषों में भी स्त्रियों जैसा ही निर्मल भाव स्फुरित कर सकूँ तो एक वर्ष के भीतर ही हिन्दुस्तान उन्नत हो जाएगा।

पुरुष स्वाभाव से ही अधीर होते हैं। उनका धर्म भी प्रसंगानुसार बदलता रहता है। उनकी भक्ति व्यभिचारी होती है, जबकि स्त्रियों की भक्ति स्फटिक मणि के समान स्वच्छ है। इन (सीता एवं दयमंती) स्त्रियों की क्षमा–शीलता की तुलना में पुरुषों की क्षमा–शीलता कुछ भी नहीं है और चूँकि क्षमा वीरता का लक्षण है, इसलिए ये सती महिलाएँ अबला नहीं सबला है। उनकी वीरता के आगे पुरुषों की वीरता पानी भरती है। लेकिन यदि दोष हमें गिनना ही हो तो पुरुष मात्र का गिनना होगा ऐसा नहीं कह सकते कि सिर्फ युधिष्ठर, नलादि में था।

हम पहले सीता राम या राधाकृष्ण कहते हैं। हम सीता या राधा का नाम पहले लेते हैं, इसका कारण यह है कि पवित्र स्त्रियाँ न हो तो पवित्र पुरुषों का होना असंभव है।

द्रौपदी विशाल विटप जैसी थी। उनकी अदम्य इच्छा शक्ति के आगे शक्तिशाली भीम भी झुक गए थे। भीम सबके लिए व्याध्र थे परन्तु द्रौपदी के लिए मेमने थे।

मेरा यह विश्वास दिन–दिन अधिक दृढ़ होता जाता है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक कार्य कर

सकती हैं क्योंकि मुझे ऐसा मालूम होता है कि पुरुषों की अपेक्षा वे अहिंसा का ज्यादा अच्छा उदाहरण पेश कर सकेगी। इसलिए नहीं कि वे कमजोर हैं, जैसा कि पुरुष अपने घमंड के कारण उनको समझा करते हैं, बल्कि इसलिए कि उनमें पुरुषों की अपेक्षा सही किस्म का साहस अधिक है और त्याग की भावना तो कई गुणा ज्यादा है।

शांति की स्थापना में स्त्रियाँ बहुत महत्वपूर्ण भाग ले सकती है। पुरुषों की नकल करने में आज स्त्रियाँ न तो पूरी तरह उनकी नकल कर सकती हैं और न प्रकृति ने उन्हें जो वरदान दिया है उनका ही विनाश कर सकती हैं। स्त्रियों में ईश्वर ने ममता पूर्ण हृदय रख दिया है। उस वरदान का उन्हें सदुपयोग करना चाहिए। यह शक्ति मूक होने के कारण अधिक कारगर है और मैं ऐसा मानता हूँ कि ईश्वर ने स्त्रियों को शांति की प्रतिनिधि होने के लिए ही पैदा किया है।

हम अपनी 15–16 वर्ष की लड़की को किसी अनजान घर में व्याह देते हैं, अनजान आदमी को सौंप देते हैं और वह लड़की उस घर की लड़की जैसी बन जाती है अथवा थोड़े ही दिनों में उस अनजान घर की मालकिन बन सकती हैं। इसका क्या कारण है? उसे भगवान ने प्रेम–हृदय दिया है। अपने स्नेह, प्रेम और अहिंसा से वह सबको जीत सकती है, यह हम रोज के व्यवहार में देखते हैं।

स्त्रियों को तो ईश्वर और उनकी अपार शक्ति का विचार करना चाहिए और उसका आधार ही सच्चा आधार है। आत्म–विश्वास और साहस का विकास करने के साथ–साथ नम्रता, सादगी परोपकार आदि स्त्री सुलभ गुण जो ईश्वरीय देन है, उनका भी सदुपयोग करना चाहिए।

अहिंसक युद्ध में स्त्रियाँ पुरुषों से भी ज्यादा भाग ले सकती हैं क्योंकि स्त्रियाँ तो त्याग और दया की और अहिंसा की मूर्ति हैं। जहाँ पुरुष अहिंसा धर्म को केवल बुद्धि से ही समझते हैं, वहाँ स्त्रियों के लिए वह एक ऐसी वस्तु है जिसे वे जन्म से ही मानती हैं।

ज्यों–ज्यों हम निर्मल होते जाते हैं त्यों–त्यों यह शर्म कम होती जाती है।

स्त्रियाँ अपने प्रति किए गए बुरे व्यवहार को भूल जाने के लिए हमेशा तैयार रहती है। इस गुण से स्त्री जाति की शोभा है। लेकिन इस गुण का दुरूपयोग पुरुष जाति ने बहुत किया है।

स्त्री में त्याग की, सहन की धैर्य की जो शक्ति है वह पुरुष में नहीं दिखाई देती। मैं स्त्रियों के हृदय छू सकूँ तब मेरा काम सभी प्रकार से पूरा होगा।

अहिंसा का मतलब है असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ कष्ट सहन की असीम क्षमता है, और स्त्री अहिंसा की अवतार हैं। यदि वह अपने प्रेम का प्रसार अखिल मानव जाति में होने दें, वह यह भूल जाए कि वह कभी भी पुरुष की वासना तृप्ति का साधन थी, या तो हो सकती है।

शांति स्थापना के कार्य में महिलाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। उन्हें प्रवाह में नहीं बह जाना चाहिए और पुरुष की भाषा का अनुकरण नहीं करना चाहिए। उन्हें लड़ाई से संबंधित किसी भी बात से न खुद संबंध रखना चाहिए और न अपने लोगों से संबध रखने देना चाहिए। कारण उन्हें समझ लेना चाहिए कि वे युद्ध की अपेक्षा शांति की अधिक समर्थ प्रतिनिधि बन सकती हैं। उनका सृजन ही उस मूक शक्ति की अभिव्यक्ति और प्रदर्शन के लिए किया गया है। जो मूक होने के कारण कुछ कम नहीं और भी अधिक प्रभावकारी हैं। 1

स्त्रियों की अज्ञानता

पुरुष को तो बाहर घूमना फिरना होता है। उसे बाहर के काम धंधे रहते हैं इसीलिए वह एकाएक गमगीन नहीं होता लेकिन स्त्री को घर में ही रहना होता है, इसलिए वह एकांतवासी बन जाती है और एकदम निराश और गमगीन हो जाती है। उसे बात करने के लिए यदि उसे दूसरी स्त्री मिलती है तो इतनी वाचाल हो जाती है कि क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं इसका तनिक भी विवेक नहीं रहता। घर में ही बने रहने के कारण उसमें ऐसे अनेक दुर्गुण आ गए हैं। यद्यपि एक दृष्टि से यह एकांत वास का लाभ तभी मिल सकता है यदि हम अन्तर्मुखी हों, अंतर को टटोलते हुए आत्म–निरीक्षण करना सीख जायें।

स्त्री और पुरुष दोनों को ही विकार तो होते हैं। विकार उत्पन्न हुआ कि उनका मन जहाँ–जहाँ घूमता रहता है, भटकता रहता है। एक बात हमें समझ लेनी चाहिए और यह कि हमारा जन्म लोगों का उपभोग करने अथवा कराने के लिए नहीं अपितु आत्मदर्शन के लिए हुआ है।

हमारी स्त्रियाँ पुरुष डाक्टरों को न तो अपने अवयव दिखाती हैं और न शल्यक्रिया ही करने देती हैं, यह झूठी शर्म है और यह विकारपूर्ण मानसिक स्थिति के कारण उत्पन्न होती है। मुझे मालूम है कि कभी–कभी उसका अनिष्ट परिणाम निकलता है। दुष्ट डाक्टर और भोली तथा जल्दी ही विकारवश हो जाने वाली स्त्री का मिलाप होने पर दुराचार हुए हैं। ऐसा तो दुनिया में हर हालत में होता रहा है, मगर इससे हम अच्छे और जरूरी काम करना बंद न कर दें। हमें अपने पर भरोसा होना चाहिए।

स्त्रियों के अज्ञानता पूर्ण उत्तर देने पर–यह आपकी नहीं हमारी गलती है; हम मर्दों की गलती है, जिन्होंने अब तक इतने से ही

संतोष माना है कि आप घर गृहस्थी सँभाले, चूल्हा चौका देखें, पानी भरें और घर बार की सफाई करें, लेकिन अब आप लोग इस स्थिति में नहीं रहेंगी।

स्त्री जाति इतनी दबाई गई है कि वे बेचारी स्वतंत्र रूप से विचार तक नहीं कर सकती हैं। इसलिए उनके प्रति हमें बहुत उदारता से काम लेना है। उसमें अत्यधिक जोखिम है। वे सब (जोखिम) उनकी सेवा के लिए हम उठायें।

बहनों के बारे तुमने जिस भय की बात की है, उसे हम बहुत बड़ा नहीं मानते। क्योंकि पुरुष वर्ग के दोषों को दरगुजार करने की हमें आदत पड़ी हुई है। बहनें बाहर निकली है। यह अच्छा ही हुआ है। उस कसौटी पर जो सफल हुई उसने व्रतों का पालन किया और अपना धर्म समझा, ऐसा हम कह सकेंगे। जो असफल हुई वह प्रयत्न करने पर भी गिरेगी तो बाद में फिर प्रयत्न करेंगी और ऊँचा उठेगी।

बहनें मुर्दार सी क्यों लगती हैं? इसका मेरी समझ से कारण है–

1. बहनों का अव्यस्थित जीवन।
2. चिन्तामय जीवन।
3. बचपन से दोषयुक्त पालन–पोषण।
4. प्रसूति के समय आरोग्य शास्त्र के नियमों के विरूद्ध सार सँभाल।
5. व्यायाम का अभाव।
6. आरोग्य को हानि पहुँचाने वाली खुराक।
7. घर में घुसे रहने की आदत।
8. अखाद्य खाने की आदत।
9. प्रायः विचारों में विकार और उन पर ज्ञानमय अंकुश रखने की बजाय उन्हें जर्बदस्ती दबाने का प्रयत्न।

सबसे बड़ा एक दोष बहनों में यह देखा गया है कि वे अपने मन की बात छिपाये रखती हैं। इससे उनमें दंभ आ जाता है और दंभ

उसी में आ सकता है जिसके मन में असत्य घर कर गया हो। दंभ जैसी विषैली वस्तु इस जगत में दूसरी मैं नहीं जानता। हिन्दुस्तान के मध्यम वर्ग की स्त्री को वह सदा ही दबाए रखता है। उनमें दंभ समा जाता है। वह कनखूजरे की तरह उन्हें कुतर कर खा जाता है। कदम–कदम पर जो नहीं भाता, वही करती हैं और उन्हें करना पड़ रहा है, ऐसा वे मानती हैं। जरा सोचकर देखें तो वे समझ जाएँ कि इस जगत में किसी से दबकर चलने का उनके लिए कोई कारण नहीं है। यदि वे जैसी हैं, उसी रूप में संसार के सामने हिम्मत के साथ खड़ी होने के लिए तैयार हो जाएँ और पहला पाठ यही सीख लें तो मैंने जो अन्य कारण बताएँ हैं उनका निराकरण हो जाए।

स्त्री अपने पति की कमजोरी को निश्चय ही जानती हैं और मिथ्या स्नेह के वश उस कमजोरी को पोषण देती है।

नारी के शरीर का यह घृणित विज्ञापन तो हवा का रूख बताने वाला एक तिनका भर है। इसमें बड़े ही शर्मनाक ढंग से नारी को पुरुष की वासना लोलुपता का शिकार बनाया गया है।

मैं ऐसी पढ़ी–लिखी लड़कियों को जानता हूँ जो ऐसे पुरुषों से विवाह करना अनुचित नहीं समझती जिनकी पहली पत्नी जीवित हो। मैं इसे स्त्री जाति का पतन कहूँगा।

महिलाओं के लिए मैं सफाई और आरोग्य को सबसे ज्यादा अहमियत दूँगा। क्योंकि इसका ठीक ज्ञान न होने के कारण उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है और फिर बहुत सारी कुप्रथायें जिनको मिटाना है–जैसे आभूषणों पर होने वाला अनावश्यक खर्च। यह जानना मुश्किल है कि सबसे पहला स्थान किस कार्य को दिया जाए। सच तो यही है कि प्रत्येक कार्य अपने जगह पर महत्वपूर्ण है। स्त्रियों को बच्चों की देखभाल और पालन–पोषण तथा जीवन में हर क्षेत्र और हर व्यापार में, खाने–पीने में भी अनुशासन की शिक्षा देने की बहुत आवश्यकता है, लेकिन महिलाओं के साथ मैत्री किए बिना कुछ भी संभव नहीं है। यह सबसे पहली और बुनियादी चीज है। 1

सामाजिक समानता

एक तरफ हम स्त्रियों को प्रताड़ित करते हैं दूसरी तरफ हममें से कितने ही विषयांध होकर स्त्री की पूजा करते हैं और जैसे हम ठाकुर जी को हर समय नए आभूषणों से सजाते हैं, वैसे ही स्त्री को सजाते रहते हैं। इस पूजा की बुराई से भी हमें बचना होगा। जैसे महादेव के लिए पार्वती, राम के लिए सीता और नल के लिए दयमंती थीं, वैसे ही जब हमारे लिए हमारी स्त्रियाँ होंगी और वे हमारी बातचीत में भाग लेंगी, हमारे साथ वाद–विवाद करेंगी, हमारे विचारों को समझकर उनको पोषण करेंगी, हमारी बाहरी मुसीबतों को इशारे में समझकर अपनी अलौकिक शक्ति से उनको दूर करने में भाग लेंगी और हमें शांति देंगी तभी हमारा उद्धार हो सकेगा, उससे पहले नहीं।

स्त्री–पुरुष की सहचारिणी है, उसकी मानसिक शक्ति पुरुष के समान ही है और उसे पुरुष की छोटी सी छोटी प्रवृति में भाग लेने का अधिकार है। जितनी स्वतंत्रता पुरुष को है उतनी ही स्वतंत्रता भोगने का अधिकार उसे भी है। जैसे पुरुष अपने क्षेत्र में सर्वोपरि है, वैसे ही स्त्री अपने क्षेत्र में सर्वोपरि है। यह स्थिति स्वाभाविक होनी चाहिए।

पढ़ने–लिखने से बुद्धि विकसित और तीव्र होती है और हमारी परोपकार करने की क्षमता बहुत बढ़ जाती है, किन्तु मैंने पढ़ने–लिखने की कीमत कभी भी बहुत ज्यादा नहीं आँकी। मैंने तो उसे केवल उचित स्थान देने का प्रयत्न किया है। फिर विद्या के बिना लाखों लोगों को तो शुद्ध आत्म–ज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता। अनेक लेखों में ऐसा अकूत ज्ञान भंडार भरा है जिससे हमें निर्दोष आनन्द प्राप्त हो सकता है, यह आनन्द भी विद्या के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। विद्या के बिना मनुष्य पशुवत है, इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है, बल्कि यथार्थ है। इसलिए पुरुष की भाँति स्त्रियों के लिए भी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है।

जब तक स्त्री–पुरुष के साथ खड़ी रहकर अपना हक नहीं माँगती तब तक उसकी उन्नति नहीं होगी। तब तक हमारी प्रगति होनी भी असंभव है।

इस समय हमारे समाज का पक्षाघात हो गया है। हम अपनी अर्धांगिनयों को आगे नहीं बढ़ने दे रहे हैं।

हिन्दुस्तान में जिस हदतक पुरुष सांसारिक, धार्मिक और राजनैतिक मामलों में भाग लेते हैं, जब तक स्त्रियाँ उस हद तक भाग नहीं लेगी, तब तक भारत के भाग्योदय का दर्शन नहीं हो सकता। जिन्हें पक्षाघात हो जाता है वे लोग कुछ भी काम नहीं कर सकते। उसी तरह स्त्रियाँ पुरुषों की कार्यों में भाग न लेंगी तो देश कंगाल ही रहेगा।

हमने स्त्रियों को बहुत दबाकर रखा है। स्त्रियों का स्त्रीत्व समाप्त हो गया है। देश–सेवा के निमित्त स्त्री को बाहर निकलने का अधिकार है और उसका धर्म भी है। स्त्रियाँ हमारी हलचल में ज्यों–ज्यों ज्यादा हिस्सा लेती जाएँगी, हम त्यों–त्यों स्त्रियों और पुरुषों को एक ही सभा–सभाओं में अधिकाधिक देखेंगे। मुझे यह स्थिति उचित मालूम होती है।

किसी भी काम के बारे में यह कहना है कि वह स्त्रियों का है या पुरुषों का ही है अनुभव के विरूद्ध लगता है। खाना–पकाना मुख्यतः स्त्रियों का ही काम माना जाता है लेकिन जो सिपाही खाना नहीं पका सकता वह किसी काम का नहीं। घर में स्वभावतः स्त्रियाँ ही खाना बनाती हैं, किन्तु बड़े पैमाने पर व्यवस्थित ढंग से खाना पकाने का काम सारे संसार में पुरुष ही करते हैं। लड़ाई में लड़ना मुख्यतया पुरुषों का काम है किन्तु गदर के दिनों में झाँसी की रानी ने अपनी बहादुरी के लिए जो नाम पाया, वह बहुत से थोड़े पुरुषों को नसीब हो सका। आज यूरोप में स्त्रियाँ सभी पदों पर काबिज होती दिख रही हैं।

मेरा आदर्श यह है कि पुरुष–पुरूष रहते हुए स्त्री बने तथा स्त्री–स्त्री रहते हुए पुरुष बनें। पुरुष को स्त्री बनना चाहिए अर्थात् उसमें स्त्रियों की नम्रता और विवेक होना चाहिए और स्त्री को पुरुष बनना चाहिए, इसका अर्थ यह है कि उसे भीरूता को छोड़ हिम्मत वाली और बहादुर बनना चाहिए।

इस पुराने विधि विधान की रचना ऋषि–मुनियों ने अर्थात पुरुषों ने ही की है। इसलिए इसमें स्त्रियों के अनुभव का अभाव है। हमें वस्तुतः स्त्री–पुरुष में से किसी को भी ऊँचा अथवा नीचा नहीं समझना चाहिए। दोनों के स्थान और कार्य अलग–अलग (नहीं) हैं। दोनों की मर्यादाएँ ईश्वर ने निश्चित की है।

चलनी, सूप पर कैसे हँस सकता है, जबकि दोनों में लगभग एक जैसे दोष हैं? उसी तरह पुरुष स्त्री को क्या कह सकता है अथवा उसपर क्या कटाक्ष कर सकता है? स्त्रियों में अनेक अंधविश्वास, विकार और भय भरे हुए हैं। पुरुषों में भी ये सब मौजूद हैं। कितने ही शास्त्रियों का कहना है कि स्त्रियों को मोक्ष नहीं मिलता। लेकिन मेरे देखने में ऐसी बात नहीं आई है। वैष्णव संप्रदाय में तो यह मानना है कि मीराबाई जैसा कोई भक्त ही नहीं है। मुझे लगता है कि यदि मीराबाई को मोक्ष नहीं मिल सकता तो किसी भी पुरुष को नहीं मिल सकता।

भारत की स्वतंत्रता तब तक एक असंभव चीज रहेगी जब तक आपकी बेटियाँ आपके बेटों के साथ स्वतंत्रता की लड़ाई में कंधे से कंधा मिलाकर नहीं खड़ी होगी और भारत की करोड़ों बेटियों के लिए इसतरह के बराबरी के दर्जे पर पुरुषों के साथ सहयोग करना तब तक संभव नहीं है जब तक उन्हें अपनी शक्ति का ठीक–ठाक भान नहीं होता। हाँ भारत की करोड़ों झोपड़ियों में चरखा जिस दिन अपने गरिमामय स्थान पर अपने फलितार्थो सहित पुनः प्रतिष्ठित हो जाएगा, उसी दिन स्त्रियों को भारत के पुनरूद्धार में अपने महत्वपूर्ण स्थान और अपनी शक्ति का ज्ञान हो जएगा। क्योंकि तब वे पुरुषों से कह सकेगी–"आप लोग अपने भोजन और वस्त्र के लिए जितना स्वयं अपने ऊपर निर्भर करते हैं उतना ही हम पर भी निर्भर करते हैं।" तब

नारी को वह गौरवमय स्थिति प्राप्त हो जाएगी जो उसका जन्म सिद्ध अधिकार है और जिससे हम पुरुषों ने—अपनी नारी जाति के प्रति गद्दारी करने वाले हम पुरुषों ने—उसे वंचित कर दिया है।

विधवाओं की शादी की क्या उम्र होंगी के उत्तर में—जो अधिकार यानि रियायते विधुर को है वही विधवा को होनी चाहिए। जो प्रश्न विधवा के लिए किए जाते हैं—विधुर के लिए उठते ही नहीं है। उसका कारण यह है कि ये कानून, पुरुषों ने बनाया है यदि इसे बनाने में स्त्रियाँ भी होती तो ऐसे कानून नहीं बनते।

पुरुष नारी जाति पर जो अत्याचार कर रहें हैं, उन्हें देखकर व्यथित होने के लिए मेरा लड़की होना आवश्यक नहीं है। स्त्रियों के अधिकार के बारे में मैं जरा भी झुकने को तैयार नहीं हूँ। मेरी राय में स्त्री पर ऐसी किसी कानूनी निर्योग्यता का बोझ नहीं होना चाहिए जिससे पुरुष मुक्त हैं। मैं लड़के और लड़की के प्रति हर तरह से भेदभाव रहित समान व्यवहार करना चाहूँगा। जैसे—जैसे स्त्री जाति को शिक्षा के द्वारा अपनी शक्ति का भान होता जाएगा जैसा कि होना भी चाहिए वैसे—वैसे उसके साथ जो असमान व्यवहार आज किया जाता है उसका वह स्वभावतः अधिकाधिक उग्र विरोध करेगी।

मेरी सभी आशा तुम बहनों पर निर्भर है। मुझे प्रायः लगता है अहिंसा की अंतिम विजय स्त्रियों के हाथों ही रहेगी। आत्मा तो दोनों की एक सी है किन्तु, पुरुष आत्मा को न पहचाने और स्त्री पहचाने तो स्त्री बलवती हो जाती है। हिन्दू स्त्रियों का हिन्दू पुरुषों पर बहुत भारी कर्ज है।

लड़की का हिस्सा लड़के जितना ही होना चाहिए।

स्वराज्य में महिलाएँ हमारी सहकर्मी और सहयोगी होंगी और उन्हीं अधिकारों और सुविधाओं का उपयोग करेगी जो पुरुषों को प्राप्त है।

मैं महिलाओं को पूर्णरूप से पुरुष के समान दर्जा दिए जाने में विश्वास रखता हूँ और मैं जिस भारत का निर्माण करना चाहता हूँ,

उसमें उन्हें वह दर्जा प्राप्त होगा। मेरे साथ जो इतनी सारी महिला कार्यकत्रियाँ काम कर रही हैं, उसका कारण मेरे ख्याल से मेरा ब्रह्मचर्य और महिलाओं के प्रति मेरी सहज सहानुभूति की भावना है।

मैं चाहता हूँ कि सभी पदों, व्यवसायों और रोजगारों के दरवाजे स्त्रियों के लिए खुल जाएँ, अन्यथा सच्ची समानता नहीं आ सकती लेकिन मैं हृदय से यह आशा करता हूँ कि हमारे देश की स्त्रियाँ अपना प्राचीन गृहलक्ष्मी का दर्जा बनाए रखेंगी।

संक्षेप में स्त्री—पुरुष के बीच जो प्रकृति ने भेद किया है और जो इन आँखों से स्पष्ट ही देखा जा सकता है उसके अलावा मुझे और कोई भेद मान्य नहीं है।

रचनात्मक कार्यक्रम में मैंने स्त्रियों की सेवा को भी स्थान दिया है। इसका कारण है यद्यपि सत्याग्रह भारत की स्त्रियों को जिस आश्चर्यजनक शीघ्रता से सहज ही अंधकार से बाहर ले आया है, वह अन्य किसी प्रकार से संभव नहीं था। फिर भी कांग्रेस जन अब तक कांग्रेस के इस आह्वान को हृदयंगम नहीं कर पाए हैं कि स्त्रियों को ऐसी स्थिति में लाना है जिससे स्वराज्य की लड़ाई में वे पुरुषों के बराबर की भागीदार बन सकें। वे यह महसूस नहीं कर पाए हैं कि सेवा—कार्य में स्त्रियों को पुरुषों की सच्ची सहयोगिनी बनना है।

मैं स्त्री पुरुष समानता में विश्वास करता हूँ, इसलिए मैं तो यह सोच सकता हूँ कि नारी को पुरुष के समान ही दर्जा मिले।

स्त्रियाँ अपने आपको पुरुषों के अधीन या उनसे छोटा क्यों मानें? कहा गया है कि नारी पुरुष की अर्द्धांगिनी है और इसी तर्क के अनुसार पुरुष नारी का अर्द्धांग है। वे दोनों अलग—अलग नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। अंग्रेजी भाषा में एक कदम आगे बढ़कर स्त्री को पुरुष का बेटर हाफ कहा गया है। इसलिए मैं स्त्रियों को सलाह देता हूँ कि वे सभी अवांछित और व्यर्थ के प्रतिबन्धों के विरूद्ध मिलकर विरोध शुरू कर दें। स्वेच्छा के साथ लगाए गए प्रतिबंध ही लाभकारी हो सकते हैं। इससे कोई हानि पहुँचना संभव नहीं है।

मैंने स्त्रियों को हमेशा बिल्कुल समकक्ष ही समझा है। मेरी पत्नी तब मुझसे हीन थी जब वह मेरी वासना तुष्टि की साधन थी।

यह सपना सपना ही रहेगा अगर मर्द लोग प्रायश्चित के रूप में सूत न कातेंगे और औरतों के साथ जो नाइंसाफी हुई है, उसको न मिटायेंगे। अगर सूत कताई की मजदूरी ही लेनी है तो जो मजदूरी एक घंटे में मर्द पा सकता है, वही मजदूरी औरतों को भी मिलनी चाहिए। जितनी मजदूरी औरतों को हो, उतनी ही मजदूरी मर्द को भी होनी चाहिए। यह जमाना अब खत्म हो गया, जब यह समझा जाता था कि मर्द औरत पर हुकूमत करने आया है। आज भी हम इसे कबूल न करें तो यह बात जुदा है। ईश्वर ने मर्द और औरत की जोड़ी बनाई है, लेकिन कोई किसी पर हुकूमत नहीं कर सकता।

जब तक स्त्री केवल विषय–भोग को वस्तु रहेगी और रसोई के काम से हटकर हमारी सहचरी के रूप में हमारे सुख–दुख की भागीदार नहीं बनेगी, तब तक हमारे सभी प्रयत्न निष्फल होंगे।

स्त्री–शिक्षा में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है। भारतीय पुरुषों में चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, पारसी हों या ईसाई स्त्रियों को बहुत पिछड़ा हुआ रखा है। वे स्त्रियों को तो खिलौने के समान रहने देते हैं या अपने विषय भोगों के लिए मनमाने ढंग से रखते हैं परिणामस्वरूप भारतीय पुरुष स्वयं दुर्बल हो गए। यदि भारत में पचास प्रतिशत प्राणी हमेशा अज्ञान में और खिलौने बनकर रहें तो भारत की पूँजी में कितना घाटा होगा–समझ सकते हैं। 1

विधवा जीवन

जैसे भीख माँगने वाले भिखारी के बारे में यह नहीं माना जाएगा कि उन्होंने सच्चा वैराग्य या फकीरी ली है इसी तरह हिन्दुओं में विधवा औरतें हजारों हैं, जिनका जीवन बिल्कुल बेकार जाता है और उस हदतक भारतीय संपदा नष्ट होती है।

हठ पूर्वक विधवा को पुनर्विवाह करने से रोकने में क्या धर्म हो सकता है? हाँ कोई स्वयं न चाहे तो उसके वैधव्य को भंग करने का प्रयत्न धर्म को हानि पहुँचाने वाला है।

विधवा पूज्य है, उनका तिरस्कार करना पाप है। उसका दर्शन शकुन है, उसे अपशकुन मानना पाप है।

यदि विधवाएँ पुनर्विवाह करना चाहें तो उनका तिरस्कार न करें, उनका जाति बहिष्कार न करें।

विधाता ने हिन्दू विधवा की सृष्टि में अपना पूरा कौशल लगा दिया है। मैं जब–जब पुरुषों को अपने दुख की कथा कहते हुए सुनता हूँ, तब–तब विधवा बहनों की प्रतिमा मेरे सामने खड़ी हो जाती है और मुझे उस पुरुष पर, जो अपने दुखों का रोना रोता है, देखकर हँसी आ जाती है।

मैं वैधव्य को हिन्दू धर्म का भूषण मानता हूँ। जब मैं विधवा बहनों को देखता हूँ तब मेरा सिर अपने आप उनके चरणों में झुक जाता है। मैं प्रातः काल उनका दर्शन करके अपने आपको कृतार्थ मानता हूँ। मैं उसके आशीर्वाद को एक बड़ा प्रसाद मानता हूँ। मैं उसे देखकर अपने तमाम दुख भूल जाता हूँ। विधवा के मुकाबले पुरुष एक पामर प्राणी है। विधवा के धैर्य का अनुकरण असंभव है। विधवा को प्राचीन काल की जो विरासत मिली है। उसके सामने पुरुष के क्षणिक त्याग की पूँजी की कीमत क्या हो सकती है?

स्त्री की तरह पुरुष भी विधुर हो जाने पर फिर विवाह न करें। यदि हम हिन्दू धर्म के रहस्य को समझ लें तो हम कष्ट, मान, संयम को शिथिल करने की अपेक्षा दूसरे उसी प्रकार के संयमों को जीवन में अपना कर उसे दृढ़ करेंगे। यदि पुरुष विधुर रहें तो स्त्री को भी अपना वैधव्य भार रूप मालूम न हो। फिर यदि पुरुष विधुर रहे तो वर्त्तमान बेजोड़ विवाह और बाल–विवाह बंद हो जाए।

किसी भी हालत में स्त्रियों के पुनर्विवाह की आवश्यकता नहीं है यह दलील खतरनाक है। इस दलील की समीक्षा करने की आवश्यकता इसलिए थी कि उच्च–धर्म के प्रर्वत्तन का आश्रय लेकर अथवा उसके बहाने धर्म के सदृश दिखाई देने वाले अधर्म का बचाव बराबर होता है। वैधव्य की व्याख्या में बाल–विवाह आ ही नहीं सकता। जो बालिकाओं को विधवा रखने का प्रतिपादन करता है, वह अनर्थ करता है।

मेरा दृढ़ मत होता जाता है कि दुनियाँ में बाल–विधवा जैसी कोई वस्तु होनी ही नहीं चाहिए। बाल और विधवा ये दो परस्पर विरोधी शब्द है। वैधव्य धर्म नहीं है, संयम धर्म है। बलात्कार और संयम ये दोनों परस्पर विरोधी हैं–एक से मनुष्य की अधोगति होती है और दूसरे से उन्नति। बलात पालन किया वैधव्य पाप है, किन्तु स्वेच्छा से पालन किया गया वैधव्य, धर्म है, आत्मा की शोभा है और समाज की पवित्रता की ढाल है। यह कहना कि पन्द्रह साल की बालिका विवेकपूर्ण वैधव्य का पालन करती है, अपनी उद्धतता और अज्ञान प्रकट करना है। पन्द्रह वर्ष की बालिका वैधव्य के कष्टों को क्या जान सकती है? माता–पिता का धर्म है कि वे उसके विवाह के लिए हर तरह की सहूलियतें दें।

धर्म के नाम पर हम गोरक्षा के लिए शोर करते हैं, परंतु मनुष्य के रूप में इन बाल–विधवा की रक्षा हम नहीं करते। धर्म के लिए हम जोर जबर्दस्ती पसंद नहीं भी करेंगे, परंतु धर्म के नाम पर हम तीन लाख ऐसी विधवाओं को वैधव्य भोगने पर विवश करते हैं जिन्होंने विवाह संस्कार का अर्थ तक नहीं समझा है। छोटी बच्चियों को

जर्बदस्ती विधवा बनाकर रखना एक पाप है और हम उसका कड़वा फल बराबर चख रहे हैं। यदि हमारी आत्मा कुंठित न होती तो वैधव्य की बात तो दूर, पन्द्रह वर्ष पहले हम विवाह ही न होने देते और इनके विषय में यह कहते कि इन तीन लाख लड़कियों का धार्मिक दृष्टि से कभी विवाह हुआ ही नहीं। इस प्रकार वैधव्य का विधान किसी भी शास्त्र में नहीं है।

यदि किसी स्त्री ने अपने पति के प्रेम का अनुभव कर लिया हो और तब स्वेच्छा से वैधव्य स्वीकार किया हो तो वैधव्य से उसका जीवन पवित्र होता है और चमक उठता है, घर पावन हो जाता है, और धर्म की भी उन्नति होती है। पर रूढ़ि से जबरन लादा हुआ वैधव्य असहय हो जाता है और परिणामतः गुप्त पाप से अपवित्रता फैलती है और धर्म की अवनति होती है।

जब तक हमारे यहाँ हजारों विधवाएँ पड़ी हुई हैं, तब तक हम मानों दलदल पर चल रहे हैं। और न जाने कब उसके भीतर धँस जाएँगे। यदि हमें पवित्र बनना है, यदि हमें हिन्दू धर्म की रक्षा करनी है, तो लादे हुए वैधव्य के इस विष से मुक्त होना ही होगा।

बाल–विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं बल्कि विवाह कर दें। पुनर्विवाह तो यह नहीं है, क्योंकि पहले उनका सच्चा विवाह कभी हुआ ही नहीं था।

विधवायें सभी युवकों पर कब्जा कर लेगी और कुमारियों के लिए वर नहीं मिलेंगे इस विचार में विवेक का अभाव लगता है। साथ ही युवतियों की पवित्रता के विषय में इतनी अधिक चिन्ता से आपके रोगी दिमाग का परिचय मिलता है। पुनर्विवाह करने वाली चन्द विधवायें कभी भी कुमारियों की विशाल संख्या को अविवाहित रहने पर विवश नहीं कर पाएँगी।

कोई दस पन्द्रह वर्ष की बालिका जिसने न अपने विवाह में कोई सहमति दी और न विवाह हो जाने के बाद अपने तथाकथित पति के साथ रहीं फिर भी जिसे एक दिन एकाएक विधवा घोषित कर दिया गया, वास्तव में विधवा नहीं है। यह तो विधवा शब्द का दुरूपयोग है।

मेरे मन में इतना अंधविश्वास तो है ही कि मैं मानता हूँ कि राष्ट्र ऐसे जितने भी पाप करता है उनका स्पष्ट परिणाम उसे भुगतना पड़ता है।

विधवा को ब्रह्मचर्य पालन से मोक्ष मिलता है के उत्तर में— ब्रह्मचर्य के पालन से विधवाओं को मोक्ष मिलता है, उसका तो अनुभव में कोई प्रमाण नहीं मिलता है और जो ब्रह्मचर्य जर्बदस्ती लादा गया है, उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। उससे तो अक्सर गूढ़ पाप होते हैं, जिससे उस समाज की नैतिक शक्ति का ह्रास होता है, जिससे ऐसे पाप होते हैं।

विधवा—विवाह के बारे में मेरी ऐसी कोई मान्यता नहीं है जो आत्मा के देहान्तरण, पुनर्जन्म और मुक्ति से असंगत हो और मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि जब वृद्ध विधुरों के पुनर्विवाह से उस मान्यता में कोई बाधा नहीं पहुँचती, तो जिन लड़कियों को गलत तौर पर विधवा कहा जाता है, उनके वास्तविक विवाह से उस भव्य सिद्धान्त में कैसे बाधा पहुँचती है? आत्मा का देहान्तरण और पुनर्जन्म मेरे लिए कोरे सिद्धांत की नहीं बल्कि ऐसी वास्तविकताएँ है जैसे कि प्रतिदिन सूर्य का उदय होना है। मुक्ति एक ऐसा सत्य है जिसे प्राप्त करने के लिए मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। इसी मुक्ति—चिन्तन ने मुझे बाल विधवाओं के प्रति किए जाने वाले अन्याय का स्पष्ट भान कराया है। बेहतर रास्ता तो यही है कि जैसी लड़कियाँ मेरे ख्याल में है वैसी लड़कियों को विधवा माना ही नहीं जाए और जिस हिन्दू में असहायों के पक्ष से खड़े होने का कुछ भी साहस होगा वह इन्हें इस असहाय स्थिति से छुटकारा दिलाना अपना कर्त्तव्य मानेगा।

प्रत्येक विधवा बहन अपने को पहचान लें कि वे बलवती हैं, स्वाश्रयी हैं, सुरक्षित हैं। जो समझदार विधवा बहनें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहती हैं उनको चाहिए कि वह अपने लायक कोई परोपकारी वृत्ति ढूँढकर उसी में अपना जीवन बिताएँ।

विधवा की शादी के उम्र के सवाल पर—जो अधिकार यानि रियायत विधुर को है वही विधवा को भी होनी चाहिए। जो प्रश्न विधवा के लिए किए जाते हैं, विधुर के लिए क्यों नहीं किए जाते? इसका कारण यह है कि ये कानून पुरुषों ने बनाया है। यदि इसमें स्त्रियाँ भी होती तो ऐसे कानून नहीं बनते।

यदि कोई विधवा पुनर्विवाह करना चाहती है, तो उसके माता—पिता भी मदद करें। यदि एक नौजवान विधुर पुनर्विवाह कर सकता है तो फिर उसी उम्र की विधवा को यह अधिकार क्यों न मिले? इन सभी विधवाओं का श्राप जो पुनर्विवाह की इच्छा से अंदर ही अंदर जलते रहती है लेकिन क्रूर रीति—रिवाजों के डर से वैसा करने की हिम्मत नहीं कर पाती, हिन्दू समाज पर तब तक लगता रहेगा जब तक कि वह समाज विधवाओं को अक्षम्य दासता में जकड़े रहेगा।

यह कहना कि विधवा—विवाह से सतीत्व का नाश होता है, भ्रममूलक और भ्रमजन्य है। जो विधवा पुनर्विवाह करना चाहती है उसको बलात अविवाहित रखने से धर्म और सतीत्व का लोप होता जाता है। बाल—विधवा का विवाह ही धर्म की और सतीत्व की रक्षा कर सकता है। विधवाओं को आदर करने से उनके लिए ज्ञान प्राप्ति के साधन मुहैय्या कर देने से और उन्हें पुनर्विवाह की संपूर्ण स्वतंत्रता देने से ही ब्रह्मचर्य की रक्षा की जा सकती है।

बाल—विधवायें समाज के दबाव में पड़कर संयम पालने का प्रयत्न करें इसकी अपेक्षा उन्हें पुनर्विवाह करने को प्रेरित किया जाए, यह मैं ज्यादा ठीक मानता हूँ। जिनमें तीव्र वैराग्य होगा, वे मना ही करेगी और उनका वैधव्य उन्हें शोभा देगा।

प्रत्येक विधुर को पुनर्विवाह करने का जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार प्रत्येक विधवा को भी है। मजबूरन पाला गया वैधव्य व्रत अभिशाप स्वरूप है। मुझे तो लगता है कि अनेक तरूण विधवाएँ यदि वे भय से मुक्त हों, तो बिना किसी संकोच से अपना पुनर्विवाह करना चाहेगी।

बाल—विवाह बंद हो जाने के बाद यदि युवा विधवाएँ होगी तो भी स्वभावतः बहुत कम होगी। सामान्य नियम के रूप में मैं मानता हूँ

कि जीवन में एक पुरुष की एक ही पत्नी और एक स्त्री को एक ही पति होना चाहिए। रिवाज के कारण तथाकथित ऊँची जातियों की स्त्रियाँ मजबूरी के वैधव्य के अभ्यस्त बन गई है। पुरुषों के लिए नियम इसके विपरीत है। यह शर्म की बात है लेकिन जब तक समाज की यह दयनीय हालत है तब तक मैं सभी युवा विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थक हूँ। मैं स्त्री–पुरुष समानता में विश्वास करता हूँ।

हमारे यहाँ विधवाओं का जितना अपमान होता है उतना किसी दूसरे देश में नहीं होता। किन्तु मैं विधवाओं को अध्यात्मरत ऋषियों की श्रेणी में रखता हूँ और आप सब बहनों को यह सलाह देने में मुझे जरा भी संकोच नहीं की यदि कोई शुभ अवसर पर आपके उपस्थित होने में या आपके खान–पान या वेशभूषा पर प्रतिबंध लगवाएँ तो आप इसका विरोध करें। पति के मरणोपरांत पत्नी का स्वेच्छापूर्वक कुछ त्याग करना दूसरी बात है। परंतु सामाजिक रूढ़ियों की परम्परा की यह जड़ता दूर हो जानी चाहिए, इसमें मुझे रत्ती भर भी शंका नहीं है। [1]

सती

सती स्त्री वह है जो पति के जीवित रहते और मृत्यु के बाद सत्यपरायणा होकर सेवा करे और मन, वचन तथा कर्म से निर्विकार रहे। पति के लिए आत्महत्या करने में ज्ञान नहीं, अज्ञान है। ऐसा करने में बड़ा अज्ञान तो आत्मा के गुण के विषय में है। आत्मा मात्र अमर है, वह सर्वव्यापक है, एक देह छूटने पर दूसरी देह का निर्माण करती है और यों करते–करते अन्त में देहातीत हो सकती है। यह बात सच है, अनुभव सिद्ध है और आज अनुभव गम्य है। ऐसी दशा में पत्नी का पति के साथ मरना क्यों ठीक माना जाए?

विवाह शरीर का नहीं आत्मा का है और अगर विवाह एक शरीर विशेष जीव के साथ ही संबंध माना जाए तो उस शरीर के नष्ट होने

पर उस संबंध का भी अंत हो जाता है और आत्महत्या करने से तो शरीर पुनः नहीं मिल सकता। तब फिर एक के शरीर के नाश होने पर दूसरे को शरीर नाश करने में क्या सार है?

सती स्त्री की दृष्टि में विवाह वासना को तृप्त करने का साधन नहीं होता बल्कि एक दूसरे को सहारा की भावना से सेवा की शक्ति को बढ़ाने का साधन है। इसलिए सच्ची सती अपना सतीत्व सप्तपदी के समय से ही सिद्ध करती है। वह साहसी बनती है, तपस्विनी बनती है, पति, कुटुम्ब और देश की सेवा करती है, वह घर गृहस्थी में फँस जाने और भोग भोगने के बजाय अपना ज्ञान बढ़ाती है। त्यागशक्ति बढ़ाती है और पति में लीन होकर जगतमात्र में लीन होना सीखती हैं।

अगर स्त्री को पति के प्रति सतीत्व सिद्ध करना उचित है तो पति के लिए भी अपना सत्व सिद्ध करना आवश्यक है और हमने स्त्री के साथ पति को जलते हुए नहीं सुना। इसलिए हम यह मान लेते हैं कि पति के साथ पत्नी के जल मरने की प्रथा चाहे जब शुरू हुई हो किन्तु वह अज्ञान मूलक है। स्त्री पति की दासी नहीं, उसकी सहचारिणी है, अर्द्धांगिनी है, मित्र है, इसलिए उसी के साथ समान अधिकार का उपयोग करने वाली है, उसकी सहधर्मिणी है। इस कारण एक दूसरे के प्रति और जगत के प्रति दोनों के कर्त्तव्य समान है।

सतीत्व का अर्थ है पवित्रता की पराकाष्ठा। यह पवित्रता आत्महत्या करके सिद्ध नहीं की जा सकती। सती होना प्रेम का नहीं आवेश का काम है। मैं चाहता हूँ कि इस आत्महत्या को सतीत्व का नाम न दें।

कानून के जोर से हमारे यहाँ जो सतीप्रथा जबरन बंद करा दी गई है, इसके लिए हमें ईश्वर का कृतज्ञ होना चाहिए। जिन बालिकाओं को इसका भान भी नहीं है कि विवाह क्या चीज है? उनसे बलात्कार पूर्वक वैधव्य पालन कराने के रिवाज को हिन्दू समाज से कोई भी बाहरी शक्ति जबरन खत्म नहीं करा सकती। यह सुधार पहले तो हिन्दुओं में प्रबुद्ध लोकमत के द्वारा हो सकता है और दूसरे तब, जब माता–पिता अपनी विधवा पुत्रियों का विवाह करना अपना कर्त्तव्य मानें। जहाँ

लड़कियों की सहमति न हो वहाँ माँ–बाप उन्हें समझायें कि पुनर्विवाह करने में कुछ दोष नहीं है। जहाँ विधवा कही जाने वाली स्त्रियाँ प्रौढ़ उम्र की हो गई हों और विवाह न करना चाहती हों, वहाँ उनसे यह कहा जाए कि उन्हें अविवाहित कुमारियों की तरह ही विवाह करने की स्वतंत्रता है इसके सिवाय और कुछ करने की जरूरत नहीं है। 1

स्त्री दमन

अज्ञान रूप अंधकूप में पतित जड़ पुरुष भी रूढ़ प्रथा के कारण स्त्री के ऊपर ऐसे अधिकार का उपयोग कर रहा है जो न तो उसे शोभा देता है और न जिसे वह सामान्यतः भोग ही सकता है, स्त्रियों की इस दुरावस्था के कारण हमारी बहुत सी प्रवृतियाँ बीच में ही ठप हो जाती है और हमारे बहुत से कार्यों का पूरा परिणाम नहीं निकलता हमारी स्थिति उस अदूरदर्शी व्यापारी की स्थिति जैसी है जो आधी पूँजी से व्यापार करता है।

यदि भारतीय महिलाएँ निष्क्रिय बनी रही और देश का अर्द्धांग निष्क्रिय बना रहीं तो देश ढंग से काम नहीं कर सकता।

हम ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति को अपनी वासना की तृप्ति का साधन बनाकर स्वयं को पशुवत बनाएँ, उसकी अपेक्षा मैं तो यही पसंद करूँगा कि समूची मानव जाति ही नष्ट हो जाए।

मेरी उत्कट अभिलाषा है कि भारतीय नारियों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता मिले। मैं बाल–विधवा को देखकर सहम जाता हूँ। जब मैं किसी पति को अपनी पत्नी के मरते ही बर्बर उदासीन भाव से दूसरा विवाह रचाते देखता हूँ तो क्रोध से काँपने लगता हूँ। मैं उन माता–पिताओं की अपराधपूर्ण उदासीनता की निन्दा करता हूँ जो अपनी पुत्रियों को अज्ञानी और निरक्षर रखते हैं तथा किसी संपन्न युवक के साथ विवाह की लालसा से पालते–पोषते हैं।

जब तक एक भी ऐसी स्त्री मौजूद है जिसे हम अपनी वासना तृप्ति के लिए रखते हैं, हम सभी पुरुष के मस्तक लज्जा से झुक जाने चाहिए।

मैं तो स्त्रियों के प्रति किए गए पुरुषों के अपराध की नाप–तौल करता हुआ शर्म से मरा जाता हूँ। ये बहनें जान बूझकर इस पाप में नहीं पड़ी। पुरुषों ने उन्हें उसमें गिराया है। अपने विषय–भोग के लिए उसने स्त्री जाति के ऊपर घोर अत्याचार किया। जिनको इस बात पर दर्द होता है उन्हें चाहिए कि वे प्रायश्चित रूप में इन बहनों को हाथ बढ़ाकर सहारा दें। जब–जब इन बहनों का चित्र मेरी आँखों के सामने आता, तब–तब मुझे ख्याल आता कि ये मेरी ही बहनें या लड़कियाँ होती तो? और होती तो क्यों हैं ही। उनको उठाना मेरा काम है। प्रत्येक पुरुष का काम है।

स्त्रियों की स्थिति नाजुक है। उनके संबंध में उठाए जाने वाले कदमों में बल–प्रयोग की गंध आ जाती है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पति को केवल वही प्रभाव डालने का अधिकार है जो शुद्ध प्रेम के द्वारा डाला जा सकता है। यदि दोनों में से कोई एक भी विषय–वासना को जड़ से काट सके तो उसका रास्ता सरल हो जाता है। मेरा दृढ़ मत है कि पुरुष को स्त्री में जो खामियाँ दिखाई देती है, उनकी पूरी–पूरी नहीं तो काफी जबाब देही पुरुष की ही है। वही स्त्री में सजधज का मोह पैदा करता है।

यह अत्यन्त लज्जा, परिताप और ग्लानि की बात है कि पुरुषों की विषय तृप्ति के लिए कितनी ही बहनों को अपना सतीत्व बेच देना पड़ता है। पुरुष ने, विधि–विधान के इस विधाता ने इस अबला कही जाने वाली जाति को बरबस जो पतन की राह पर चलाया है, उसके लिए उसे भीषण दण्ड का भागी होना पड़ेगा।

भारत के पुरुष जिनके पापपूर्ण और अनैतिक भोग–विलास के लिए ये बहनें ऐसी शर्मनाक जिन्दगी बसर कर रही हैं, अपनी इन हजारों बहनों की जिन्दगी पर विचार करें। सबसे बढ़कर दयनीय बात तो यह है कि इन घातक और संक्रामक पापागारों पर मँडराने

वाले अधिकांश लोग विवाहित होते हैं और इसलिए वे दूसरे पाप के भी भागी होते हैं। वे अपनी धर्मपत्नियों के प्रति भी पापाचार करते हैं क्योंकि उनके प्रति एक–निष्ठ होने के लिए वे प्रतिज्ञाबद्ध हैं और इन बहनों के प्रति भी पाप करते हैं क्योंकि उनके सतीत्व की रक्षा करने के लिए वे उतने ही बाध्य है, जितने कि अपनी सगी बहन को।

स्त्रियों के पवित्रता के विषय में इस तरह की विकृत चिन्ता की क्या जरूरत है? पुरुषों को सच्चरित्र बनाने के लिए स्त्रियों द्वारा चिन्ता किए जाने की बात तो कभी नहीं सुनी गई। तब पुरुष ही क्यों स्त्रियों की पवित्रता का ठेका देने का दुःसाहस करे? पवित्रता बाहर से तो लादी नहीं जा सकती। यह तो अन्तरिक विकास की वस्तु है और इसलिए यह हर व्यक्ति के अपने प्रयास पर निर्भर है।

पुरुष अपनी काम–वासना की तृप्ति के लिए स्त्री का उपयोग करके उसके प्रति सदा अन्याय करता रहता है। जो व्यक्ति अपने मित्र के प्रति सच्चा प्रेम रखता है वह उसकी मृत्यु के बाद और भी चाहने लगता है।

किसी स्त्री के घर पर न होने के कारण घर में बहुत सूनापन लगने का कारण मैंने हमेशा यह माना है कि यह स्त्री और पुरुषों के बीच काम के बँटवारे से संबंधित हमारी गलत धारणा का परिणाम है। घर को ठीक–ठाक हालत में रखने का मौका आने पर पुरुष का लाचारी अनुभव करना और अपनी देखभाल खुद करने का मौका आने पर स्त्री का लाचारी अनुभव करना गलत ढंग के लालन–पालन का परिणाम है। यदि कोई स्त्री देखभाल करने के लिए न हो तो पुरुष को इतना काहिल क्यों होना चाहिए कि वह अपना घर साफ सुथरा न रख सके और स्त्री को ऐसा क्यों लगना चाहिए कि उसे हमेशा एक पुरुष संरक्षण की आवश्यकता है?

वेश्याओं का उद्धार करने के लिए पुरुषों के भीतर के पशु का नाश करना होगा। जब तक जगत में पुरुष–पशु रहेंगे तब तक वेश्याओं का रहना लाजिमी हैं।

मैंने सदा से यह माना है कि आक्रामक पुरुष ही होता है। वह स्त्री से ज्यादा विषयासक्त होता है।

कुछ पुरुष तो ऐसे होने ही चाहिए, जिनमें स्त्रियोचित गुणों का समावेश भी हो। यदि स्त्री और पुरुष विकारवश हुए बिना कभी साथ नहीं रह सकते तो उनका ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य नहीं कहा जा सकता। क्या माँ–बेटा, पिता–पुत्री, बहन और भाई इसतरह नहीं रहते? तो फिर जिन लोगों का परस्पर कोई नाता–रिश्ता नहीं, क्या वे लोग इस तरह नहीं रह सकते? और यदि हम अपने प्रति सच्चे हुए तो भूल करने के बाबजूद किसी दिन हम देखेंगे कि जो असंभव प्रतीत होता था, वह संभव हो गया है।

स्त्री–पुरुष का व्यवहार एवं संपर्क हमारे प्रयोग के अर्न्तगत आता है। किंतु चूँकि हमारा तौर–तरीका भिन्न है और हमारे प्रयोग में अधुनिक स्वच्छंदता संबंधी विचारों का मिश्रण हो गया है। इसलिए निष्फलता का आभास होता है। लेकिन कुल मिलाकर मेरी राय यह है कि हमारा प्रयोग निष्फल नहीं गया है। हमारा प्रयोग जिस सत्य पर आधारित है, उसे हम ना भूलें, वह सत्य है। आत्मा ही आत्मा का मित्र और शत्रु है। हम कन्याओं को अपनी रक्षा करने की शिक्षा देने का प्रयत्न करते हैं। व्यभिचार आदि पाप की अपेक्षा मैं असत्य को अधिक भयंकर पाप मानता हूँ।

पुरुष और स्त्री नवजीवन की सृष्टि की इच्छा से संसर्ग करें अन्य किसी इच्छा से नहीं। यदि वे एक दूसरे का, केवल वासना वश अलिंगन करने के लिए एक दूसरे के निकट आते हैं तो वे शैतान के ज्यादा करीब होते हैं। दुर्भाग्यवश पुरुष यह भूल जाता है कि वह दिव्यता के निकट है और अपनी सहज पाशविक प्रकृति के पीछे ही भटकता है और पशु से भी बदतर बन जाता है।

मेरा यह कभी विश्वास नहीं रहा कि ब्रह्मचर्य के सही पालन के लिए स्त्री संपर्क मात्र त्याज्य है। जो संयम स्त्री–पुरुष के संपर्क–मात्र पर, चाहे वह कितना ही निर्दोष क्यों न हो–अंकुश लगाता है, वह बलात धारण किया गया संयम है, जिसका कोई महत्व नहीं है।

स्त्रियों को ऐसी रीतियों और कानूनों से दबाया गया है जो पुरुषों के बनाए हुए हैं और जिनको गढ़ने में स्वयं स्त्रियों का कोई हाथ नहीं रहा। अहिंसा पर आधारित जीवन–योजना में स्त्रियों को अपने भाग्य–निर्माण का उतना ही अधिकार है, जितना पुरुषों को अपने भाग्य–निर्माण का है। किन्तु चूँकि अहिंसक समाज में प्रत्येक अधिकार का स्रोत अधिकार के उपभोग से पहले किया गया कोई न कोई कर्त्तव्य होता है, इसलिए स्वाभाविक है कि सामाजिक आचार के नियम आपसी सहयोग और परामर्श से बनाए जाएँ। स्त्रियों के प्रति अपने व्यवहार में इस तत्व को पुरुषों ने पूर्णतः चरितार्थ नहीं किया है। पुरुषों ने अपने को स्त्रियों का प्रभु और स्वामी माना है, जबकि उन्हें मानना चाहिए था मित्र और सहकर्मी। भारत की स्त्रियों का उद्धार करना कांग्रेसजनों का विशेष सौभाग्य और धर्म है। आज यहाँ स्त्रियाँ बहुत कुछ प्राचीन काल के उन गुलामों की स्थिति में हैं, जो नहीं जानते थे कि वे मुक्त भी हो सकते हैं या उन्हें मुक्त होना है और जब उनकी मुक्ति आई तो क्षण भर को तो उन्होंने अपने को असहायावस्था में पाया। स्त्रियों को अपने को पुरुषों की दासी मानना सिखाया गया है। उन्हें इस योग्य बनाना कांग्रेसियों का काम है कि वे अपनी पूरी ऊँचाई तक पहुँच सकें और पुरुषों की बराबरी की भूमिका निभा सकें।

स्त्री का संसार ऐसा ही बना है। पुरुष–स्त्री को चाहे जिस कारण से छोड़ सकता है पर स्त्री निर्मल सेवा के निमित्त भी नहीं छोड़ सकती, यह धर्म में दोष है। लेकिन यह इतना गहरा बैठा हुआ है कि निकलता ही नहीं।

स्त्रियों के बीच इतना ज्यादा काम है कि कभी–कभी तो कुछ स्त्रियों की संस्थाओं में स्त्री कार्यकर्त्ताओं के अभाव में पुरुषों को काम करना पड़ रहा है। हमारे समाज ने स्त्री वर्ग की तरफ असह्य उपेक्षा दिखाई है और उसमें काम करने के लिए बुद्धिमती और सेवाभाव वाली बहनों की जरूरत है। फिर भी इतना ध्यान रखने के लिए जरूर कहूँगा कि पुरुषों और स्त्रियों को आपस में स्पर्धा नहीं करनी

चाहिए। दोनों ही समान रूप से अति आवश्यक तथा महत्वपूर्ण है। दोनों के बीच कोई परदा नहीं होना चाहिए। इसी तरह एक दूसरे के प्रति उनका बरताव भी स्वाभाविक और सहज होना चाहिए।

मैं स्त्री–स्पर्श के निषेध को ब्रह्मचर्य नहीं मानता। मैंने स्त्रियों को हमेशा पुरुषों के समकक्ष ही समझा है।

हममें कुछ लोग स्त्री को विषयान्ध होकर देवी के रूप में पूजते हैं और ठाकुरजी की मूर्ति की तरह उसे आभूषणों से सजाते हैं। हमें इस तरह की दोष–युक्त पूजा से भी अवश्य छुटकारा पाना है। अंत में तो हमारी स्त्रियाँ शिव और उमा, राम और सीता, नल और दयमंती के अनुरूप हमारे साथ गोष्ठियों में भाग लेंगी, हमसे वाद–विवाद करेंगी, हमारे उद्गारों को समझेंगी और उसका पालन करेंगी। जब वे अपनी अलौकिक प्रेरणा शक्ति से ही समझ लेंगी तथा उसका हल प्रस्तुत कर हमें शांति देंगी तभी हमारा उद्धार संभव है। 1

बलात्कार

किसी स्त्री के मन में विकार नहीं है, उस स्त्री का बलात्कार हो जाए तो उसका शील–भंग नहीं होता। वह निर्लेप रहती है। न तो जगत उसके ऊपर कटाक्ष कर सकता है और धर्म तो उसे कोई दोष देगा ही नहीं। इसलिए पवित्र हृदय स्त्री को शील–भंग का भय कभी करना ही नहीं चाहिए। उसे तो यह विश्वास रहना चाहिए कि यदि उसका मन अचल है तो शरीर की पवित्रता भंग हो ही नहीं सकती।

कोई भी मानव–पशु किसी स्त्री को संज्ञाशून्य करके उसके साथ बलात्कार करता है तो इससे उस स्त्री का शील सम्मान भंग हो गया मानना बिल्कुल गलत है।

जिसका बलात्कार हुआ है वह स्त्री किसी भी प्रकार से तिरस्कार या बहिष्कार की पात्र नहीं है, वह तो दया की पात्र है। वह तो घायल

हुई है। इसलिए हम जिस तरह घायलों की सेवा करते हैं, उसी तरह हमें उसकी सेवा करनी चाहिए। जिसका शील बलात्कार पूर्वक भंग किया गया है उसे किसी भी प्रकार निन्दनीय न माना जाए तो ऐसी घटनाओं को छिपाने का जो रिवाज है वह मिट जाएगा। इस रिवाज के खत्म होते ही ऐसी घटनाओं के विरूद्ध लोग खुलकर चर्चा कर सकेंगे।

अपहृत लड़कियों ने न कोई अपराध किया है और न उन पर कोई कलंक लगा है। वे हर सही विचार वाले आदमी की सहानूभूति और सक्रिय सहायता की पात्र है। ऐसी लड़कियों को अपने में खुशी–खुशी और योग्य लड़कों से उनकी शादी में कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए।

आज स्त्रियों के प्रति हम अनुचित व्यवहार करते हैं और मेरे पास रोज जो उसकी लाज लूटी जाने की खबरें आ रही हैं, वह तो हमारी नीचता की और हमारी पशुता की परकाष्ठा है। मैं तो यह मानता हूँ कि इस पाप से हमारा उद्धार होना मुश्किल है।

सारे देश में जहाँ देखों वह एक ही खबर मिलती है कि अमुक स्थान पर अमुक स्त्री को गुंडों ने बिगाड़ा या फेंक दिया। ऐसी अनेक खेद जनक खबरें सुनकर मेरा दिल द्रवित हो जाता है। हमारी स्त्रियाँ इतनी भीरू कैसे बन गई? स्त्रियों की प्रतिभा कम होती गई, इसके लिए स्त्रियाँ भी उत्तरदायी हैं। आपको द्रौपदी और सीता की तरह ईश्वर में असीम श्रद्धा रखनी चाहिए। जो पुरुष–स्त्रियों को खराव करते हैं, वे कौन हैं? आपके ही भाई–पिता या पुत्र हैं? आपको अपने घर के पुरुषों को ऐसे क्रूर–कर्म से रोकना चाहिए। लेकिन आज तो स्त्रियों के मन में ऐसा विचार ही नहीं रहा। उसके बजाय अपना पुत्र, भाई या पिता पर–स्त्री को मारे या तंग करे, तो घर की स्त्री गर्व करती है, ऐसे उदाहरण मैंने बहुत देखे हैं। लेकिन याद रखिए कि आज जो पुरुष या नौजवान बाहर की बहनों की बेइज्जती करेगा, परिणामस्वरूप सगे भाई–बहन भी व्यभिचारी होंगे। 1

अबला नहीं, सबला

स्त्रियाँ स्वयं को अबला मानकर ऐसे कार्यों के उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकती। अबला विशेषण आत्मा के संबंध में कदापि लागू नहीं हो सकता। निर्बलता तो शरीर के बारे में कही जा सकती है। एक बालिका जिसकी आत्मा उज्जवल है, जिसे आत्मा की प्रतीति हो गई है, वह बालिका साढ़े छः फीट लम्बे उद्धत अंग्रेज का सामना करके उसे परास्त कर सकती है।

महाभारत के रचयिता ने स्त्रियों के लिए द्रौपदी का उदाहरण रखकर सिखाया कि संकट के समय उन्हें सिंह की तरह गरजना चाहिए और अपने धर्म की रक्षा करना चाहिए।

पुरुष और स्त्री दोनों निर्भय बन सकते हैं। पुरुष (प्रायः) ऐसा मानता है कि वह निर्भय रह सकता है, लेकिन यह बात हमेशा सच नहीं होती और इसी तरह स्त्रियाँ भी अपने को निर्बल मानकर अपने लिए 'अबला' नाम चलने देती है–यह बात भी ठीक नहीं है। स्त्रियों को भयभीत रहने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। मीराबाई वृन्दावन गई और वहाँ उन्होंने एक साधु का दरवाजा खटखटाया। साधु ने कहा कि मैं किसी स्त्री का मुँह नहीं देखता। मीराबाई ने पूछा–तुम कौन हो ? मैं तो मात्र एक ही पुरुष को जानती हूँ और वह है ईश्वर। यह सुनकर साधु ने अपना दरवाजा खोल दिया और मीराबाई को साष्टांग नमस्कार करके कहा–आज मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं अंधकूप से निकल आया।

स्त्री और पुरुष दोनों जब तक विकार के वशीभूत हैं, तब तक दोनों को भय है। द्रौपदी ने उतना ही बल दिखाया था, जितना युधिष्ठर ने दिखाया था। द्रौपदी पाँच–पतियों से विवाह के बावजूद भी सती कही जाती है। उसे सती कहा जाता है। इसका कारण यह है कि उस युग में जिस तरह एक पुरुष कई स्त्रियों से विवाह कर सकता था, उसी तरह (प्रदेश विशेष में) स्त्रियाँ भी एक से अधिक पुरुषों से

विवाह कर सकती थी। विवाह संबंधी नीति युग–युग में (और देश–देश में) बदलती रहती है। द्रौपदी ने अगाध बल का परिचय दिया। भीम भी द्रौपदी से डरता था। युधिष्ठर, धर्मराज थे, वे भी उससे डरते थे।

मेरा कोई नहीं है, इस विचार का हमें त्याग करना चाहिए। सबका आधार ईश्वर ही है। आज स्त्रियों की जो स्थिति है उसपर विचार करते हुए उनके पतियों को दोषी ठहराया जा सकता है। लेकिन स्त्रियों को तो यह विचार करना है कि वे स्वयं अपनी निर्बलता को कैसे निकाल बाहर करें।

स्त्रियों को किसी से भयभीत होने की जरूरत नहीं। उन्हें किसी का भी भय रखने का कोई कारण नहीं है। उन्हें यह मानना चाहिए कि उनके ऊपर सदैव ईश्वर का वरद हस्त है। यदि हम सच्चे हृदय से ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हों, तो हमें किसका भय हो सकता है? कितना ही दुष्ट व्यक्ति तुम पर हमला करने के लिए आए, उस समय तुम राम–नाम लेना। अनेक दुष्ट व्यक्ति तो ऐसे ही भाग निकलेंगे। परंतु कभी–कभी ऐसा न भी हो तो क्या? प्राण देने की पूरी–पूरी तैयारी रखना हमारा धर्म है। यदि हम उसके बलात्कार के आगे आत्म समर्पण नहीं करते और मर जाते हैं, परंतु वश में नहीं आते तो उक्त दुष्ट व्यक्ति क्या कर सकता है? संभव तो यह है कि मरने की पूरी तैयारी किए हुए पवित्र व्यक्ति के सम्मुख दुष्ट व्यक्ति अपनी दुष्टता ही छोड़ देगा। इसलिए सत्याग्रह से दोहरा लाभ है। जो व्यक्ति सत्याग्रह करता है उसका तो भला होता ही है, परंतु जिसके विरूद्ध सत्याग्रह किया जाता है, उसका भी भला होता है।

हम अपनी बालिकाओं को अपंग बनाते हैं, उनमें अनुचित विकार पैदा करते हैं, जो बात नहीं है उसका आरोप करते हैं। और फिर उसके बाद हम उन्हें दबाना शुरू करते हैं और फिर अक्सर व्यभिचार का पात्र बना देते हैं। बालिकाएँ मानने लगती हैं कि वे स्वयं अपने शील की रक्षा करने में असमर्थ हैं। इस अपंग दशा से बालिकाओं को मुक्त करने के लिए आश्रम में भगीरथ प्रयास किया जा रहा है।

स्त्रियों को अबला कहना उनका अपमान करना है। यह पुरुषों द्वारा उसके साथ किया गया अन्याय है। यदि शक्ति का मतलब केवल पशुबल ही है, तो बेशक स्त्रियों में पशुबल कम है, किन्तु नैतिक शक्ति में स्त्रियों की शक्ति से पुरुषों की शक्ति की तुलना भी नहीं की जा सकती।

स्त्री अपने को निर्बल क्यों गिने? दोनों बराबर हैं और परस्पर मित्र जैसे हैं। स्त्री अपंग बनकर पति को भी अपंग बना देती है, उसी से पति के विचार से भी उसका वीरांगना बनना योग्य है।

कोई औरत बेचारी नहीं है, बेचारी क्या, पुरुष से भी ज्यादा शक्तिवान है। यदि आप भारत के गाँवों में आयें, तो यह चीज आपको प्रत्यक्ष दिखाने के लिए बिल्कुल तैयार हूँ। वहाँ कोई भी औरत आपको बता देगी कि यदि वह न चाहे तो ऐसा कोई मर्द पैदा नहीं हुआ है जो उसकी इच्छा के विरूद्ध उसे मजबूर कर सके। यदि औरत में झुकने के बजाय मर जाने की इच्छा शक्ति है तो कोई राक्षस औरत को झुकने पर मजबूर नहीं कर सका। यह पारस्परिक मर्जी की चीज है। पुरुष और नारी इन दोनों में ही पशु और देवत्व का मिश्रण हैं और यदि हम पशु को परास्त कर सकें तो इसमें कल्याण ही होगा।

लड़कियों से–यह विश्वास रखें कि चाहे जैसा राक्षसी वृति का आदमी हमला करे तो भी उसका मुकाबला करने की ताकत ईश्वर तुझे अवश्य देगा, जरा भी डरना नहीं चाहिए। ऐसी नौबत आ जाए तो जितना जोर हो सब लगा देना चाहिए, इसका नाम हिंसा नहीं है। यह बात याद रखना चाहिए कि व्यभिचारी पुरुष हमेशा कायर होता है। वह पवित्र स्त्री का तेज सह नहीं सकता। उसके गरजने से वह काँपने लगता है।

बहनें अबला हैं इस बात को वे बिल्कुल भूल जायें। जिनमें मौत को गले लगाने का साहस और जोखिम है इन्हें कदापि निर्बल नहीं माना जा सकता।

बहनों को काम से इधर–उधर आने–जाने में जो डर लगता है वह मन को दृढ़ करने से निकल जाएगा। मन में यह निश्चय करके कि रक्षा करने वाला राम है, सेवा या काम के लिए जहाँ जाना जरूरी हो वहाँ चले जाना चाहिए। डर किसका? पुरुषों का ही न? पुरुष मात्र कोई बहनों पर हमला करने की ताक में थोड़े ही बैठे रहते हैं। उनका जन्म भी माता के पेट से ही हुआ है। यह विश्वास रखना चाहिए कि वे मातृ–सदृश स्त्री–जाति पर इस तरह हमला करेंगे ही नहीं। स्त्री अपना मातृपद धारण कर ले, तब तो वह पुरुष से उसी हालत में डर सकती है, जब माता अपने बालक से डरें। इतने पर भी कोई कामांध निकल आए तो बहनें समझें कि उनकी पवित्रता रूपी कवच उनकी रक्षा जरूर करेगा।

स्त्री को 'अबला' कहना, उसे लांछित करना है। मुझे नहीं मालूम कि वह अबला कैसे हैं? हाँ उसमें पुरुष वाली पाशविक वृति नहीं होती, या कम होती है। तो इसका मतलब यह है कि पुरुषों की तुलना में स्त्री अधिक उदात्त है और वास्तव में ऐसा ही है। यदि वह चोट करने में कमजोर हैं तो चोट सहने में अवश्य ही अधिक सक्षम है। मैंने स्त्री को त्याग और अहिंसा की प्रतिमूर्ति कहा हैं। उसे अपने शील की, अपने सम्मान की रक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना सीखना है। मुझे तो कोई ऐसा प्रसंग मालूम नहीं, जब पुरुष ने नारी के शील की रक्षा की हो। वह चाहे तो भी नहीं कर सकता। राम ने सीता के शील की रक्षा नहीं की और न पाँच पांडवों ने द्रौपदी के शील की है।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जो भी स्त्री निडर है, जिसका यह दृढ़ विश्वास है कि उसकी पवित्रता ही उसके सतीत्व की सर्वोत्तम ढाल है, उसका शील सर्वथा सुरक्षित है। ऐसी स्त्री के तेज से नरपशु चौंधियाकर लज्जित हो जाएगा। ऐसी स्त्रियों के उदाहरण आज भी मिलते हैं। बहनों को मेरी सलाह है कि वे भय से मुक्त हो जायें और निर्भय बनी रहें। स्त्रियों में पाई जाने वाली घबड़ाहट वे छोड़ दें। ऐसी स्त्रियों में परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए कटु अनुभवों की इच्छा रखने की तनिक भी जरूरत नहीं है। न हरएक फौजी पशु है न पुरुष। निर्लज्जता की इस हद तक जाने वाले पुरुष कम ही होते हैं। इसी लिए थर–थर काँपने की जरूरत नहीं है। जरूरत इस बात की है, हर स्त्री निर्भय बनने की शिक्षा प्राप्त करें। यह शिक्षा माता–पिता और पति को ही देनी है। यह शिक्षा प्राप्त करने का सरलतम उपाय ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न करना है। अदृश्य हाते हुए भी वह प्रत्येक की रक्षा करने वाला विश्वस्त साथी है। जिसके मन में इस तरह की भावना उत्पन्न हो चुकी है वह सब प्रकार के भयों से मुक्त हैं।

निडरता या आस्था की शिक्षा एक दिन में प्राप्त नहीं की जा सकती। अतएव यह समझ लेने की जरूरत है कि इस बीच क्या उपाय किया जा सकता है ? जिस स्त्री पर हमला हो वह हमले के समय हिंसा से अहिंसा का विचार न करें, आत्मरक्षा ही उसका परमधर्म है। उस समय उसे जो उपाय सूझे अपनी रक्षा हेतु करे।

स्त्री अबला नहीं है। अपने को कभी भी पुरुष से बलहीन नहीं समझें। इसी से किसी पुरुष की दया न माँगे, न अपेक्षा करें।

बहुधा कहा जाता है कि स्त्रियाँ प्रकृति से ही दुर्बल होती हैं–वे अबला हैं। स्त्रियों को मेरी सलाह है कि ऐसी बातों पर विश्वास न करें। मेरे मत में स्त्रियाँ पुरुषों जितनी ही सबल हो सकती है। क्या कोई सोच सकता है कि सीता–सावित्री किसी भी देश के पुरुष से कम साहसी थी? इस कारण किसी भी स्त्री को ऐसा सोचकर कि वह नैसर्गिक रूप से दुर्बल है, अपनी प्रतिष्ठा घटानी नहीं चाहिए।

पुरुष हो या स्त्री, अगर आपको बहादुर जाति बनना है तो यह साहस होना जरूरी है। मैं स्त्री और पुरुष में कोई अंतर नहीं मानता। स्त्रियों को भी अपने आपको पुरुषों जैसा ही स्वतंत्र मानना चाहिए। वीरता पर केवल पुरुषों का ही सर्वाधिकार नहीं है। आत्मरक्षा की कला बाहरी सहायता की अपेक्षा नहीं रखती।

यदि औरतें डरेगी तो कभी भी उनकी सहायता नहीं की जा सकती। मैं डंके की चोट पर यह कहने आया हूँ कि औरतों को बहादुर बनना होगा, नहीं तो मर जाना होगा।

आपको अपनी आत्मा और प्रभु में ही पूरा भरोसा रखना चाहिए। आत्मविश्वास और हिम्मत बढ़ानी चाहिए। डरनेवाले को सभी डराते हैं। इसलिए यदि आप डरपोक रहेंगी तो ईश्वर ने आपको हिम्मत बढ़ाने की शक्ति का जो वरदान दिया है, उसके प्रति आप गैर वफादार साबित होंगी। इसीलिए आपको अपनी शक्ति का सदुपयोग करने के लिए भी अपने में विद्यमान शक्ति का अंदाजा लगाना चाहिए।

भारत की बहनों को अबला कहने की खोज किसने की होगी वह तो ईश्वर ही जाने। अबला कहना उस शक्ति की निन्दा करना है। मेरी दृष्टि में तो यह स्त्रियों के लिए एक प्रकार की गाली है। हमारी स्त्रियाँ न तो कभी अबला थीं, न आज हैं।

हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ अबलाएँ नहीं थीं। आज भी नहीं हैं और भविष्य में भी नहीं होंगी। रामायण और महाभारत के समय से यदि हम देखें तो पाएँगे कि स्त्रियों की बहादुरी अपूर्व है और यह बहादुरी उन्होंनें अपने चरित्र–शक्ति से प्राप्त की है। 1

स्त्री-स्वतंत्रता

विदेश में रहने वाली स्त्री का भारत जाने से मना करने पर–मेरा ऐसा ख्याल है कि वह देश में सुखी नहीं रहेगी। वहाँ स्त्रियों की ऐसी करूणाजमक स्थिति है कि जो आत्मिक और शारीरिक स्वतंत्रता उसे यहाँ प्राप्त है, वैसी स्थिति अपने देश में स्त्रियों को सुलभ नहीं है। फीनिक्स में रहते–रहते उसका मन परिष्कृत होकर दृढ़ हो जाए, उसमें इतना साहस भी आ जाए कि वह अपने विचारों और व्यवहार को जो शुद्ध है, निडर होकर देश में भी रक्षा कर सके। तभी उसे देश में अच्छा लगेगा। तब उसका वहाँ रहना देश के लिए कल्याणकारी होगा और वह देश की तथा अपने आत्मा की सेवा करेगी।

राक्षस की स्त्री मन्दोदरी को भी स्वतंत्रता थी। द्रौपदी पांडवों को धौंस देती थी, भीम जैसा पति द्रौपदी के पास नम्र बनकर जाता था। सीता पति की बात ही क्या? सीता थीं, कि राम पूजे गए। धर्म में बल प्रयोग नहीं हो सकता। मीराबाई ने अपने आचरण से अपने व्यक्तित्व को सिद्ध कर दिखाया है।

जिन लड़कियों को अविवाहित रहना है, उन्हें स्वतंत्रता का वरण करना चाहिए। परतंत्र रहने वाली लड़की अविवाहित रह ही नहीं सकती।

हमें लड़के–लड़कियों की ओर शंकित नजर से नहीं देखना चाहिए। स्त्री जाति की जो सेवा हम करना चाहते हैं, जो स्वतंत्रता इष्ट है, वह खतरा उठाने के सिवा कभी हासिल नहीं हो सकती।

मैं यह बात नहीं मानता कि जिन लड़कियों पर सख्त नियंत्रण रखा जाता है, उसमें वासना नहीं होती। बल्कि उल्टे ऐसी लड़कियाँ आत्म–नियंत्रण खो बैठती हैं। अतः हमें कोई मध्यम मार्ग खोजना चाहिए। हमें लड़के–लड़कियों को स्वतंत्रता देनी चाहिए और साथ ही नियंत्रण की शिक्षा भी। जहाँ बाल खुले रखने का रिवाज है, वहाँ क्या होता होगा? वासनाओं का उद्गम स्थान कहीं अपने बाहर थोड़े ही हैं। वह तो हमारे भीतर, हमारी आँखों में है। और विकृत दृष्टि को तो हर कहीं अपवित्रता या विकार ही नजर आता है।

मैं मध्यम मार्ग में विश्वास रखता हूँ। अधिकांश लड़के–लड़कियों को अपने माता–पिता के निर्देश में रहना चाहिए और उनका कहा मानना चाहिए। माता–पिता को भी अपने अभिभावकत्व या निरीक्षण में रहने वाले लड़के–लड़कियों के स्वतंत्रता का आदर करना चाहिए और उसको बढ़ावा देना चाहिए।

पति के साथ बिल्कुल नहीं रह सकती, तो माता–पिता से कह दो। जैसा वे कहें शांति से सुनो और सहन करो। जिस चीज के लिए मन तैयार नहीं, उसको बलपूर्वक करने में लाभ नहीं हानि है। क्योंकि मन ही आत्मा के बंधन और मोक्ष का कारण है।

तुम अपने को पराधीन मानो ही मत अथवा यह मानो कि मनुष्य अपने मनोविकारों का ही गुलाम बनता है, बाह्य वातावरण का नहीं अतः यह गुलामी एक मानसिक स्थिति है। 1

स्त्री-स्वावलंबन

स्त्रियों की आर्थिक परतन्तत्रता दूर करने के भी अनेक उपाय मैं बता सकता हूँ। आर्थिक स्वतंत्रता का सीधा उपाय है कि प्रत्येक स्त्री कोई न कोई उद्योग करें।

स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता से दुराचार फैलेगा और गृहस्थ जीवन टूट कर बिखर जाएगा के उत्तर में—मैं इस प्रश्न के उत्तर में कुछ प्रतिप्रश्न करूँगा? क्या पुरुष की स्वतंत्रता से और संपत्ति पर उसका स्वामित्व होने से पुरुषों में दुराचार नहीं फैला है? अगर आपका उत्तर हाँ में है तो स्त्रियों के साथ भी वही होने दीजिए और जब स्त्रियों को संपत्ति के स्वामित्व के अधिकार तथा सभी बातों में पुरुषों जैसे हक मिल जाएँगे, तब पता चल जाएगा कि ऐसे अधिकारों का उपयोग उनके पाप—पुण्य के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। जो सदाचरण व्यक्ति की, चाहे पुरुष हो या स्त्री, निस्सहायता पर निर्भर है, उसमें प्रशंसा के योग्य कोई बात नहीं है। सदाचरण का मूल तो हमारे हृदयों की शुद्धता में होता है।

कस्तूरबा ट्रस्ट की समस्त योजना का उद्देश्य स्त्रियों को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाना रहा है। इसका मतलब यह नहीं कि इससे पुरुषों की स्थिति हीन हो जाएगी बल्कि यदि स्त्रियों की दशा में सुधार होगा, और वे प्रगति करेंगी, तो इससे पुरुष भी अपने आप प्रगति करेंगे। यह एक अच्छी बात है कि अन्य देशों की तरह भारत में स्त्रियों और पुरुषों के बीच झगड़ा नहीं होता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि भारतीय स्त्रियों की स्थिति यूरोपीय देशों की

स्त्रियों की स्थिति से बेहतर है। निरर्थक बातों में बहुत सा समय नष्ट हो रहा है यदि आप इसे रचनात्मक कार्य में लगायें तो आपकी स्थिति में आश्चर्यजनक सुधार होगा।

मुझे चरखे का स्वर बड़ा प्यारा लगता है क्योंकि यह स्त्रियों को सुरक्षा देने वाला किला है।

यह धन चरखा के लिए खर्च होगा। यह धन उन गरीब बहनों को मिक्षा के रूप में नहीं दिया जाएगा, बल्कि वे जो काम करेंगी, उसके बदले दिया जाएगा। वे इसलिए भूखी नहीं है कि उनके गाँवों में खाने की कमी है, वे इसलिए भूखी हैं कि उनके पास कोई काम नहीं है, जिससे वे पैसा कमा सकें। यदि आज खादी के जरिए सच्चे हृदय से इन गरीब बहनों का विचार करेंगी तो खादी केवल वाह्य परिवर्त्तन का प्रतीक ही नहीं होगी, बल्कि संपूर्ण हृदय बदल जाएगा।

चरखा (आर्थिक स्वावलंबन) इन घोर अन्यायों को दूर करने के लिए है। चरखा स्त्री को वह स्थान प्रदान करता है, जिसकी वह अधिकारिणी है।

मैं चरखे को (आर्थिक स्वालंबन) हमारी गरीब बहनों की दशा सुधारने का सबसे बड़ा साधन मानता हूँ। चरखा उन्हें आशा की किरण दिखाता और उनमें आत्म—सम्मान की भावना उत्पन्न करेगा।

यदि विधवा बहन निर्धन हों तो ऐसी स्थिति में कर्त्तव्य यह नहीं है कि तुम उनका आजीवन भरण—पोषण करते रहो, बल्कि उसे दृढ़तापूर्वक स्वावलंबी बनाना है।

सामाजिक काम तो बहनें करती ही हैं लेकिन वह व्यक्तिगत रूप में करती हैं। मेरी इच्छा है कि किसी सामाजिक सेवा के लिए बहनें सामूहिक रूप में जिम्मेवारी लें। ऐसा करने से संघ—शक्ति पैदा होती है। यह शक्ति ईश्वर ने ही मनुष्य को दी है। इस देश में स्त्रियों ने यह शक्ति विकसित नहीं की है। इसमें दोष पुरुषों का है।

स्त्री के पास ऐसी नकद संपत्ति बहुत ही कम होती है जिसे वह अपनी कह सकें। जो आभूषण वह पहनती हैं वह उसके कहे तो जाते

है पर उन्हें भी वह अपने स्वामी की अनुमति के बिना दे नहीं सकतीं, उसे देने का साहस नहीं कर सकतीं। एक उत्तम कार्य के लिए अपना निजी चीज का दान उसे ऊँचा उठा देता है, किन्तु उनमें आर्थिक स्वाबलंबन बहुत कम है, इसी से वे ऐसा नहीं कर सकतीं। 1

विविध

जो पुरुष अपनी पूजा कराता है वह तो भ्रष्ट होता ही है किन्तु बहनें क्यों भ्रष्ट हों? और बहनों को पूजा करना ही हो तो जीवित व्यक्ति की पूजा किसलिए? ज्ञानी सोलन के वाक्य हृदय में लिख लेने लायक है "किसी जीवित आदमी को अच्छा नहीं कहा जा सकता।" आज अच्छा है तो कल बुरा है। फिर दंभी को तो हम पहचान ही नहीं सकते। इसी से पूजा केवल भगवान की ही हो सकती है। मनुष्य की पूजा अगर करनी ही हो तो उसके मरने के बाद। क्योंकि पीछे हम उनके गुणों की पूजा करते हैं, शरीर की नहीं।

स्त्रियों की पोशाक आश्रम में भी कुछ अजीब सी रही है। लेकिन मैं मानता हूँ कि पंजाब की पोशाक सबसे अच्छी है।

सच्ची सेविका वही स्त्री बन सकती है जो अपनी इच्छा को रोक और कर्त्तव्य में ही आनंद माने। श्रेय और प्रेम का झगड़ा हमारे हृदय में हमेशा चलता है। उससे श्रेय को पसंद करना और उसी को प्रेम देना यह मनुष्यत्व है। श्रेय किसे कहें यह हमेशा प्रतीत नहीं होता है। इसलिए साधना में विशिष्ट, आप्त या गुरुजनों पर विश्वास रखकर काम करना आवश्यक होता है। 1

हिन्दू-मुस्लिम एकता में स्त्रियों की भूमिका

आप हिन्दू बहनों के साथ मिल–जुल कर रहें। अपने परिवार के बच्चों के समक्ष इस तरह की बातें कीजिए जिससे दोनों कौमों के बीच प्यार बढ़े। आप जितना कर सकती हैं उतना पुरुष नहीं कर सकते। आप अपने पति–पुत्र, अथवा पिता जो भी हों, उनसे कहिए कि देश में जहाँ कहीं भी मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहा है, वहाँ वे उसकी रक्षा करने के लिए दौड़े जाएँ। आप हिन्दू औरतों को बचाइए और उनका विश्वास प्राप्त कीजिए कि वे आपकी सगी बहनें हैं। बहनों को मैंनें अहिंसा की साक्षात मूर्ति कहा है। प्रभु ने बहनों को जैसा प्रेम भरा हृदय दिया है, वैसा पुरुषों को नहीं दिया है, उसका आप सदुपयोग करें। मुझे यह बात दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट दिखाई देती हैं कि जब तक बहनें संस्कार युक्त नहीं बन जातीं और यह नहीं समझती कि उनका धर्म क्या है? तब तक देश उन्नति नहीं कर सकता। 1

स्वयं गांधी

मैं अपने दौरों में लाखों लड़कियों का परिचय पाया हूँ। उन सबके विचार से मैं पुरुष नहीं बल्कि स्त्री ही हूँ। जब में दक्षिण अफ्रिका में था, तभी समझ गया था कि मैं स्त्री जाति की सेवा नहीं करूँगा तो मेरा सारा काम अधूरा ही रह जाएगा। शायद यही कारण है कि जब मैं किसी महिला समाज में जाता हूँ, तो वहाँ की महिलायें समझती हैं कि उनके बीच कोई उसका मित्र आ गया है।

प्रवृतिमय जीवन व्यतीत करते हुए भी तीस वर्षों से मैं ब्रह्मचर्य का अभ्यास करता आ रहा हूँ और उसमें काफी सफल भी रहा हूँ। ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करने का निश्चय करने के बाद मनुष्य के

साथ–सिवा अपनी पत्नी के–मेरे बाहरी व्यवहार में लगभग कोई परिवर्तन नहीं आया। दक्षिण अफ्रिका में रहनेवाले भारतीयों के बीच काम करते हुए मैं मुक्त रूप स्त्रियों से मिला करता था। द्रांसवाल या नेटाल में शायद ही कोई भारतीय स्त्री हो, जो मुझे नहीं जानती थी। वे सब मेरे लिए बहनों और बेटियों के समान थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकों से लिया गया नहीं था। मैंने खुद ही कुछ नियम बना लिया। यदि मैंने ब्रह्मचर्य संबंधी ग्रंथों में बताए गए निषेधों का पालन नहीं किया है, तो सारे पाप तथा प्रलोमन के मूलस्वरूप दिए गए स्त्रियों के वर्णन को–यहाँ तक कि धर्मग्रंथों में दिए गए ऐसे वर्णन को–तो मैंने और भी जोर से अस्वीकार किया है। मुझमें जो भी सद्‌गुण है, उसका श्रेय मेरी माता जी को है, ऐसा मानते हुए मैंने स्त्री को कभी भी विषय–तृप्ति के साधन के रूप में नहीं देखा है, बल्कि सदा वैसी ही श्रद्धा से देखा है जैसी श्रद्धा से अपनी माँ को देखना मेरा कर्त्तव्य है। प्रलोभन देने वाला और आक्रमण करने वाला तो पुरुष है। पुरुष को नारी का स्पर्श अपवित्र नहीं करता, बल्कि प्रायः वह स्वयं इतना अपवित्र रहता है कि नारी का स्पर्श करने योग्य नहीं रहता।

अधिक शुद्धि के लिए मैं आत्म–मंथन कर रहा हूँ। वैसी शुद्धि के बल पर ही मैं नारी जाति और उसके माध्यम से संपूर्ण मानव जाति की अधिक सेवा कर सकता हूँ।

जिस तरह मेरे अन्दर ब्रह्मचर्य का उदय हुआ उसके कारण मैं माता के रूप में स्त्रियों के प्रति दुर्निवार रूप से आकृष्ट हुआ। स्त्रियाँ मेरे लिए इतनी पवित्र हो गईं कि मैं उनके प्रति वासनामय प्रेम का ख्याल ही नहीं कर सकता।

मुझे भारत की स्त्रियाँ क्यों जानती हैं? इस प्रश्न पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि वे मुझे उनके प्रति मेरे प्रेम के कारण जानती हैं।

–सुजाता

❖❖❖